जनवरी-मार्च 1991

वर्ष : 23 • अंक : 1

Mr Ashok Arya

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका

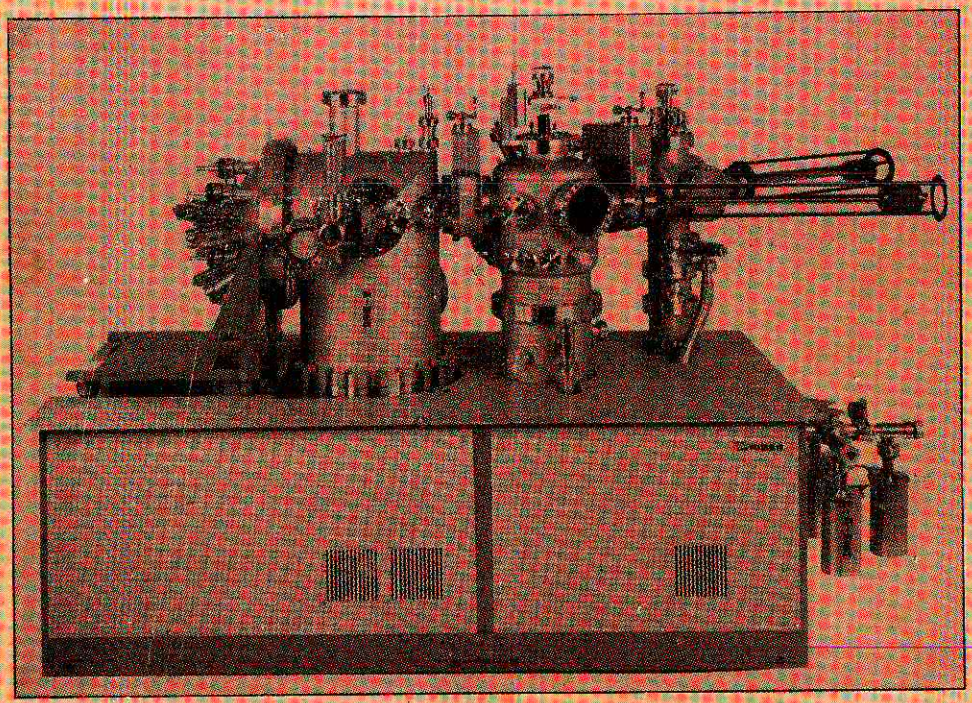

आण्विक पुंज एपीटैक्सी संयंत्र

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन व प्रचार प्रसार हेतु परिषद नियमत रूप से त्रैमासिक पत्रिका **वैज्ञानिक** का प्रकाशन, विज्ञान गोष्ठियों, वार्ताओं एवं अखिल भारतीय लेख प्रतियोगिता का आयोजन करती है।

परिषद की सदस्यता एवं **वैज्ञानिक** पत्रिका का शुल्क (रु.):

	परिषद सदस्यता			वैज्ञानिक शुल्क 5 रु. प्रति	
	एक वर्ष	आजीवन	प्रवेश शुल्क	एक वर्ष	तीन वर्ष
व्यक्तिगत	15	100	1	15	40
संस्थागत	25	250	1	25	70

1. वैज्ञानिक विशेषांकों का मूल्य अलग से निर्धारित होगा।
2. वर्तमान नियमानुसार परिषद के सदस्यों को वैज्ञानिक निःशुल्क भेजी जाती है।
3. सभी शुल्क **हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद** के नाम से **डिमांड ड्राफ्ट** (बम्बई) अथवा **भारतीय पोस्टल आर्डर** द्वारा ही भेजें। **कृपया बम्बई से बाहर के चैक व मनीऑर्डर द्वारा शुल्क** न भेजें।

'वैज्ञानिक' में विज्ञापन

हिन्दी में प्रकाशित होने वाली विज्ञान पत्रिकाओं में **वैज्ञानिक** अग्रणी है। देश के सभी मुख्य वैज्ञानिक संस्थान इसके ग्राहक हैं। इस पत्रिका में आपके विज्ञापन आमंत्रित हैं। पूरे पृष्ठ की छपाई का आकार 16 सें.मी. x 21 सें.मी है।

विज्ञापन की दरें	:	**(एक प्रति के लिए)**
अंतिम आवरण	:	रु.2,500/-
दूसरा/तीसरा आवरण (अंदर)	:	रु.2,000/-
पूरा पृष्ठ	:	रु.1,500/-
आधा पृष्ठ	:	रु.800/-

अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता - 1991

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा.प.अ. केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं। लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर आधुनिक जानकारी होनी चाहिए। दो टंकित अथवा स्पष्ट लिखित प्रतियां (लगभग 3000 शब्द) **वैज्ञानिक** कार्यालय को भेजें। चित्रों को सफेद कागज पर काली रोशनाई से बनाएं और लेख के अंत में संलग्न कर दें।

पुरस्कार : प्रथम रु.1500/-, द्वितीय रु.1000/-, तृतीय रु.500/-

इसके अतिरिक्त पांच प्रोत्साहन पुरस्कार व अहिंदी भाषी प्रतियोगियों के लिए दो **विशेष पुरस्कार** - प्रत्येक रु.300/- के दिये जायेंगे। अतः अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें।

अंतिम तिथि : 31 अगस्त 1991

विशेष : पुरस्कृत रचनाएं **वैज्ञानिक** की संपत्ति होंगी। **वैज्ञानिक** से संबंधित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे। **वैज्ञानिक** हेतु अन्य रचनाएं भी आमंत्रित हैं। सभी प्रकाशित रचनाओं पर मानदेय दिया जाता है।

पत्राचार का पता : श्री. ज्ञानोत्तम लाल गोस्वामी, सचिव, हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद, परमाणु ईंधन प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्रॉम्बे, बम्बई - 400 085.

वैज्ञानिक

वर्ष : 23 • अंक : 1

जनवरी-मार्च 1991

— व्यवस्थापन मंडल —

डा. शिव प्रकाश गर्ग

श्री ज्ञानोत्तम लाल गोस्वामी

श्री ललित कुमार

श्री राम निवास आर्य

श्री राम चरण शर्मा

श्री राम प्रकाश हंस

— संपादन मंडल —

डा. जनार्दन स्वरूप

डा. गोविन्द प्रसाद कोठियाल

डा. कैलाश चन्द्र भल्ला

डा. दुर्गा प्रसाद पांडे

— शुल्क —

भारत में

	संस्थागत	व्यक्तिगत
एक वर्ष -	25 रु.	15 रु.
तीन वर्ष -	70 रु.	40 रु.

— विदेश में —

(समुद्री डाक द्वारा प्रेषण)

	संस्थागत	व्यक्तिगत
एक वर्ष -	45 रु.	35 रु.
तीन वर्ष -	125 रु.	95 रु.

अनुक्रमणिका

लेख — पृष्ठ सं.

1. **रंगीन खाद्य पदार्थ एवं हमारा स्वास्थ्य** 4
   — रामलाखन सिंह एवं डी. पी. मिश्र
2. **कृत्रिम रूप से अधिमिश्रित संरचनाएँ : अर्द्ध धातु तकनीक में नये आयाम** 7
   — डा. गोविन्द प्रसाद कोठियाल
3. **मानव जीवन में घासें** 12
   — डा. राजकिशोर एवं डा. सुरेश सिंह
4. **द्वयलव गणित क्या है ?** 15
   — श्याम लाल धीमान
5. **चयापचयन प्रक्रिया का एक रूप** 18
   — ओम प्रकाश खंडेलवाल
6. **ऊतक संवर्धन के कुछ अनुप्रयोग** 20
   — अखिलेश कुमार तिवारी
7. **कवक विशालुताएं : अनंत खतरे** 22
   — डा. रमेश सोमवंशी
8. **संगीत : एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण** 26
   — सुधांशु पंत एवं राजेश कुमार
9. **खाद्य पदार्थों में मिलावट** 29
   — डा. डी. डी. ओझा
10. **मस्कुलर डिस्ट्रोफी : निदान एवं उपचार के नूतन आयाम** ... 33
    — डा. मदन मोहन बजाज
11. **भयानक और विनाशकारी भूकंप** 41
    — दयाशंकर पाटिल
12. **रोग फैलाने वाले कुछ कीट** 44
    — डा. ए. के. चोपड़ा

विज्ञान महापुरुष

13. **वायु में पहली उड़ान - मांगल्फिये भाई** 47
    — (सुश्री) पूनम वार्ष्णेय

विज्ञान कथा

14. **तेल-भक्षी जीवाणु** 50
    — राजकुमार जैन

* "वैज्ञानिक" में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है ।
* "वैज्ञानिक" में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं. वि. सा. परिषद के पास सुरक्षित हैं ।
* "वैज्ञानिक" एवं हिं. वि. सा. परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय बम्बई के न्यायालय में ही होगा ।

कार्यालय :
"वैज्ञानिक" हिंदी-विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेंट्रल कॉम्प्लेक्स,
भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र,
बंबई - 400 085.

टिप्पणी

1. गाजर घास : एक जहरीला पौधा 53
2. पपीता — एक बहुगुणकारी फल 53
3. भोजन और मस्तिष्क 54
4. खनिजों की पहचान में पेड़-पौधों का योगदान 56
5. घेंघा रोग 56
6. खेजड़ी का संवर्धन 58
7. मानव और लोहा 58

स्तंभ :

1. संपादकीय 3
2. प्रश्नोत्तरी 60
3. विज्ञान के बढ़ते कदम 62
4. बालविज्ञान 63
5. पुस्तक समीक्षा 66
6. संगोष्ठी समाचार 67

"वैज्ञानिक" के स्वामित्व का ब्योरा

फार्म IV

1.	प्रकाशन स्थल	:	भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्रांबे, बम्बई - 400 085.
2.	प्रकाशन	:	त्रैमासिक
3.	मुद्रक का नाम	:	डा. शिव प्रकाश गर्ग
	राष्ट्रीयता	:	भारतीय
	पता	:	धात्विकी प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्रांबे, बम्बई - 400 085.
4.	प्रकाशक का नाम	:	डा. शिव प्रकाश गर्ग
	राष्ट्रीयता	:	भारतीय
	पता	:	धात्विकी प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्रांबे, बम्बई - 400 085.
5.	संपादक का नाम	:	डा. जनार्दन स्वरूप
	राष्ट्रीयता	:	भारतीय
	पता	:	स्वास्थ्य भौतिकी प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्रांबे, बम्बई - 400 085.
6.	कुल पूंजी के 1% से अधिक के भागीदारों के नाम और पते	:	हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद पुस्तकालय एवं सूचना प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्रांबे, बम्बई - 400 085.

मैं, डा. शिव प्रकाश गर्ग, एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी तथा विश्वास के अनुसार ऊपर दिया गया विवरण सही है ।

— डा. शिव प्रकाश गर्ग
व्यवस्थापक, "वैज्ञानिक"

संपादकीय

धूप से चलनेवाले पंप

हमारे देश में ऊर्जा की कमी सदा से रही है। मध्यपूर्व में युद्ध के कारण पेट्रोलियम के आयात में कमी, और उसके मूल्य में वृद्धि ने ऊर्जा की कमी को एक घोर संकट के रूप में हमारे सामने लाखड़ा किया है।

पेट्रोलियम के उत्पाद, डीजल का उपयोग हमारे देश में 60% से भी अधिक परिवहन और यातायात के लिए होता है। इसके अतिरिक्त, गांवों में ऐसे स्थानों पर जहाँ या तो बिजली की आपूर्ति है ही नहीं, या फिर वह अनिश्चित है, जमीन के नीचे से सिंचाई के लिए पानी निकालने में भी डीजल से चलनेवाले पंपों का उपयोग बहुतायत से किया जाता है। अत:, इसमें भी डीजल की पर्याप्त खपत होती है। परिवहन तंत्र राष्ट्र का जीवन है। इसे यथा-संभव अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए, खेतों में सिंचाई की वैकल्पिक व्यवस्था बनाना आवश्यक हो गया है जिससे जो भी संभव हो, डीजल की बचत की जा सके।

आन्तरिक दहन इंजनों के आविष्कार से पूर्व धूप से चलनेवाले भाप के पंपों का प्रचलन कुछ देशों में था जिन का उपयोग बेहतर व्यवस्था हो जाने के बाद बन्द हो गया। इन पंपों में एक बन्द बर्तन में आसपास पड़ने वाली धूप संकेद्रित की जाती थी। इस बर्तन में पानी की गहराई एक अन्य बड़े बर्तन से नली द्वारा जोड़ कर कम रखी जाती थी जिससे कि पानी जल्दी भाप बन जाए। इस भाप को एकत्रित करके इससे एक पिस्टन चला लिया जाता था जिससे पानी खींचने का पंप जुड़ा होता था। धूप से चलनेवाले इस पंप में अधिक शक्ति नहीं होती थी। अत:, भाप की थोड़ी-सी शक्ति और लीवर आदि यांत्रिक सहायता से जमीन के नीचे का पानी निकाल लिया जाता था, जैसा कि हाथ से चलाये जाने वाले हत्थू-नलों में होता है। आज के इंजीनियर यदि आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का उपयोग करके उस तरह के पंप का फिर से 'विकास' करें तो कदाचित इनसे अधिक शक्ति उत्पन्न हो सकती है, और फिर इनसे पानी खींचने के अतिरिक्त खेती के अन्य काम भी किये जा सकते हैं। हमारे देश में धूप की कोई कमी नहीं है। अभियांत्रिक महाविद्यालयों में इस प्रकार के पंपों के निर्माण और विकास को एक अभियांत्रिक समस्या के रूप में प्रयोग करने के लिए अन्तिम वर्ष के विद्यार्थियों को भी दिया जा सकता है जिससे महत्त्वपूर्ण परिणामात्मक आंकड़े एकत्र हो सकते हैं।

सिंचाई के क्षेत्र में डीजल की बचत से परिवहन तंत्र पर दबाव कम हो जाएगा। इसके अतिरिक्त, संकट के काल में राष्ट्रीय लाभ के साथ-साथ, इस पंप का विकास करनेवाले व्यक्ति या संस्था को पर्याप्त आर्थिक लाभ भी होगा।

* * *

विज्ञान के विभिन्न विषयों पर ज्ञानवर्धक लेख प्रस्तुत हैं। कुछ अपरिहार्य कारणों से "वैज्ञानिक"के प्रकाशन में जो विलम्ब आरम्भ हो गया है उसे हम इस अंक में भी दूर नहीं कर पाये हैं। जुलाई-सितंबर, 1990 (22 : 3) अंक से आरम्भ किये गये धारावाहिक लेख, "दूर संचार के इतिहास की विशिष्टताएं" का प्रकाशन उस अंक के बाद के अंश से इस अंक में पुन: आरम्भ किया जा रहा है। आपकी प्रतिक्रिया की हमें प्रतीक्षा है।

– जनार्दन स्वरूप

रंगीन खाद्य पदार्थ एवं हमारा स्वास्थ्य

राम लखन सिंह एवं डी. पी. मिश्र
जीव रसायन विभाग
विज्ञान एवं मानविकी महाविद्यालय
गो. ब. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
पंतनगर - 263 145.

प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त रंग, जैसे केसर या हल्दी का प्रयोग भोज्य पदार्थों में प्राचीन काल से होता रहा है; परंतु वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति के साथ संश्लेषित रंगों का प्रयोग व्यापक स्तर पर पहुंच गया है। क्या ये सभी संश्लेषित रंग स्वास्थ्य के लिए अहानिकारक हैं? विश्लेषणों के आधार पर अनुमोदित रंगों के भी प्रयोग की क्या सीमाएं हैं? इनके प्रयोग में क्या सावधानी रखने की आवश्यकता है और असावधानी के क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं? प्रस्तुत लेख इन प्रश्नों की विवेचना करता है।

रंगों का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि मानव जीवन का इतिहास। इस संसार में आंखें खोलते ही मानव ने सर्वप्रथम अपने चारों ओर हरे भरे पेड़ पौधे, उनमें लगे हुए लाल, पीले, हरे, नीले आदि रंगों के फूल एवं फल तथा तरह-तरह के रंग बिरंगें जीव जन्तु एवं पशु पक्षी देखे। इन विभिन्न प्रकार के जीवधारियों के मनमोहक रंगों को देखकर उसके मन में भी लालसा हुई होगी कि वह उन्हें किसी-न-किसी प्रकार अपने दैनिक जीवन में प्रयोग करे। इसी विचारधारा के वशीभूत होकर मानव ने इन रंगों का अपने शरीर पर लेपन किया, इनसे उसने अपने घर की दीवारों को रंगा तथा उन पर अनेकानेक प्रकार की रंग बिरंगी कलाकृतियों को जन्म दिया। प्राचीन काल से लेकर उन्नीसवीं सदी के मध्य तक रंगों के निर्माण तथा उनके उपयोग की विधियां अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ही रहीं तथा मानव प्राकृतिक रंगों का ही प्रयोग करता रहा जो अधिकतर अहानिकार ही होते हैं।

वर्ष 1956 में परकिन नामक वैज्ञानिक ने सर्वप्रथम माव नामक रंग का संश्लेषण किया। उसके पश्चात तो समस्त संसार में अनेकानेक प्रकार के रंग संश्लेषित एवं प्रयुक्त किये जाने लगे।

रंगों का उत्पादन तथा प्रयोग

इस समय विश्व में कुल 8 लाख मीट्रिक टन से भी अधिक संश्लेषित रंगों का उत्पादन किया जाता है। इनमें से लगभग 56% कपड़ा उद्योग, 15% कागज तथा चमड़ा उद्योग, 23% कार्बनिक रंग तथा 6% अन्य वस्तुओं को रंगने में प्रयुक्त किये जाते हैं जिनमें खाद्य पदार्थ भी सम्मिलित हैं।

खाद्य पदार्थों में रंग

खाद्य पदार्थों में रंग मिलाकर उन्हें आकर्षक बनाने का इतिहास काफी पुराना है। हमारे पूर्वज भी केसर, हल्दी तथा अन्य प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त रंगों का उपयोग अपने खाद्यपदार्थों को आकर्षक एवं स्वादिष्ट बनाने हेतु करते थे। इनमें से कुछ रंगों में तो रोग निवारक क्षमता भी होती थी।

संसाधित (प्रोसेस्ड) खाद्य पदार्थों का प्रयोग बढ़ने के साथ-साथ इनसे संबंधित उद्योगों में भी बढ़ोत्तरी हुई है तथा इस समय संसाधित खाद्य पदार्थों को रंगने का एक तरह से आवश्यक प्रचलन हो गया है। इन खाद्य पदार्थों में परिरक्षक (प्रीजरवेटिव) मिलाकर इन्हें काफी समय तक प्रयोग करने के योग्य बनाया जाता है। परिरक्षक मिलाने तथा संसाधन की अन्य क्रियाओं से गुजरने के कारण इन खाद्य पदार्थों का प्राकृतिक रंग उड़ जाता है तथा इनके आकर्षण एवं ग्राह्यता में कमी आ जाती है। इन्हें पुनः वही आकर्षण एवं ग्राह्यता प्रदान करने के लिए इनमें रंग मिलाना कभी-कभी अति आवश्यक हो जाता है।

प्राकृतिक रंग संश्लेषित रंगों के मुकाबले कुछ गुणों में निम्न होते हैं क्योंकि इनकी रंजक क्षमता बहुत कम होती है तथा इनमें उतना आकर्षण नहीं होता। साथही साथ, इन रंगों का मूल्य भी अधिक होता है। इन्हीं सब कारणों से संश्लेषित रंजकों का प्रयोग अधिक मात्रा में होता है। इस समय समस्त विश्व में लगभग 65 तरह के संश्लेषित रंगों का प्रयोग किया जाता है। इनमें से डेनमार्क में 33, ब्रिटेन में 20, जापान में 11, भारत में 11, कनाडा में 10, संयुक्त राज्य अमेरिका में 9

तथा रूस में 3 रंग खाद्य पदार्थों में प्रयोग करने हेतु वैध हैं। नार्वे तथा ग्रीस दो ऐसे देश हैं जहां कोई संश्लेषित रंग प्रयोग नहीं किया जाता है।

भारत में प्रयुक्त होने वाले संश्लेषित खाद्य रंग

भारत में खाद्य मिलावट निवारण अधिनियम (प्रिवेन्शन आफ फूड एडल्टरेशन एक्ट) 1954 के तहत 13 संश्लेषित रंग खाद्य पदार्थों में प्रयोग करने के लिए वैध घोषित किये गये थे लेकिन 1968 में 5 रंग विषाक्तता के कारण निकाल दिये गये तथा 3 नये रंग जोड़ दिये गये । इस प्रकार, अब कुल 11 रंगों का प्रयोग वैध है। इनके नाम हैं : अमरन्थ, ब्रिलिऐन्ट ब्लू एफ सी एफ, कारमोइसीन, इरिथ्रोनीन, फास्ट ग्रीन एफ सी एफ, फास्ट रेड ई, ग्रीन एस, इंडिगो कार्मीन, पोन्शियू चार आर, सनसेट येलो एफ सी एफ तथा टारट्राजीन। इनके अतिरिक्त कई वर्जित रंग भी प्रयोग किये जाते हैं, जिनमें औरामीन, बटर येलो (पीला), ब्लू बी आर एस (नीला), कान्गो रेड, सूडान दो तथा तीन (लाल), मैलाकाइट ग्रीन (हरा), मेटानिल येलो या गऊ मार्का पीला रंग, औरैन्ज दो (पीले से नारंगी) एवं रोडामीन बी (गुलाबी) प्रमुख हैं। ये वर्जित रंग बाजार में आसानी से उपलब्ध होते हैं तथा वैध रंगों की तुलना में इनका मूल्य भी कम होता है। ये वर्जित रंग हानिकारक होने के कारण जटिल स्वास्थ्य समस्याओं को जन्म देते हैं। मिलावट संबंधी कानून के मानदण्डों का लालची लोगों द्वारा ठीक तरह से पालन न किये जाने के कारण वर्जित रंगों का प्रयोग इस समय की अति हानिकारक सामाजिक बुराइयों में से एक हो गया है।

मिलावट का परिमाण

औद्योगिक विष विज्ञान अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ के वैज्ञानिक डा. जी. बी. सिंह एवं उनके सहकर्मियों (वरिष्ठ लेखक ने भी इनके साथ 1980 से 1987 तक विभिन्न रंगों की विषाक्तता पर शोध कार्य किया है) ने रंगों का विस्तृत अध्ययन किया है। इनके द्वारा किये गये एक अध्ययन में पूरे उत्तर प्रदेश में 13 वर्षों (1960-1972) में जन विश्लेषक द्वारा इकट्ठे किये गये खाद्य पदार्थों के चार लाख नमूनों का सर्वेक्षण किया गया। इनमें से बिना डेरी वाले खाद्य पदार्थों में 40%, दूध से बने पदार्थों में 33%, खाद्य तेलों में 15-16%, दालों तथा अनाजों में 13%, वनस्पति घी में 4% तथा अन्य नमूनों में से 19% में मिलावट थी। कुल मिलावटी नमूनों के काफी बड़े भाग में वर्जित रंगों का प्रयोग किया गया था। इन नमूनो में मिठाई, पेय, मसाले, दालें तथा तेल प्रमुख हैं।

यहीं पर किये गये एक अन्य सर्वेक्षण के अनुसार पूरे उत्तर प्रदेश में इकट्ठे किये गये कुल 12575 रंगीन नमूनों में से 70% में वर्जित रंगों का प्रयोग किया गया था। कुल वर्जित रंगों में मेटनिल येलो या गऊ मार्का पीला रंग 29%, औरैन्ज दो 11%, औरामीन 9%, रोडामीन बी 8%, ब्लू बी आर एस 6% तथा मैलाकाईट ग्रीन 4% नमूनों में पाये गये। सरसों के तेल के नमूनों में बटर येलो की उपस्थिति के संकेत मिले हैं।

रंगों की विषाक्तता

वर्जित रंग: इन रंगों की अधिक विषाक्तता के कारण ही इन्हें खाद्य पदार्थों में प्रयोग करने के लिए अवैध घोषित किया गया है। प्रयोगशाला में गऊ मार्का पीला रंग या मेटानिल येलो जब अधिक मात्रा में चूहों या गिन्नी पिग को खिलाया गया तो उनके नर जननांगों में हानि के संकेत मिले तथा शुक्राणु बनने की क्रिया मंद पड़ गयी। इसी रंग के एक चयापचयी पदार्थ (मैटाबोलाइट) पैरा अमीनो डाई फिनाईल अमीन, जो बालों को रंगने वाले रंग बनाने में प्रयुक्त होता है, को जब चूहों को खिलाया गया तो उनमें यकृत तथा जननांगों में हानि के लक्षण प्रकट हो गये। औरैन्ज दो नामक रंग के खाने से चूहों की तिल्ली बढ़ गयी तथा उनमें रक्ताल्पता जैसे रोग के संकेत मिले। औरामीन नामक रंग बनाने के कारखाने में काम करने वाले मनुष्यों के मूत्राशय में ट्यूमर होने की अधिक सम्भावना होती है। इनके खाने से चूहों में बाढ़ रुकने तथा यकृत एवं गुरदों में क्षति के लक्षण प्रकट हो गये। ब्लू बी आर एस के खाने से नर चूहों की बढ़वार में कमी तथा मादा में रक्ताल्पता एवं रक्त कैंसर के संकेत मिले हैं। मैलाकाइट ग्रीन चूहों के फेफड़ों तथा अण्डाशय में ट्यूमर का निर्माण करने में सहायक होता है तथा इनमें कैंसर भी होने की संभावना रहती है। कांगो रेड नामक रंग से खरगोश के भ्रूण में दोष पैदा हो गया। सूडान एक तथा दो में चूहों के यकृत तथा गुरदों में शोथ हो जाता है। बटर येलो कैंसर कारक होता है।

वैध रंग

वर्जित रंगों के साथ-साथ वैध रंग भी कई प्रकार की विकृतियां उत्पन्न कर सकते हैं। अमरन्थ तथा टाइट्राजीन नामक रंग एक साथ मिलाकर चूहों को खिलाने से यह फास्फोराइलेज नामक प्रकिण्व (एन्जाइम) को बनने से रोकते हैं

जिसके कारण यकृत में ग्लाइकोजेन की मात्रा घट जाती है। अमरन्थ को एन्ड्रियानोवा नामक वैज्ञानिक ने कैंसरकारक बताया है। जर्मन खाद्य रसायन शोध संस्थान, म्यूनिख के वैज्ञानिकों ने इरिथ्रोनीन नामक वैध रंग को उत्परिवर्तक (म्यूटाजेनिक) बताया है। इसके खाने से रक्ताल्पता तथा कोलेस्टेराल का स्तर भी कम हो सकता है। इस रंग की अधिक मात्रा कुत्ते के गुरदों को हानि पहुंचाने में सक्षम है। इन्डिगो कार्मीन गिनी पिग में रक्ताल्पता उत्पन्न करता है तथा चूहों में इसके खाने से फाइब्रोसारकोमा हो सकता है। पोन्शियू चार आर गिनी पिग में रुधिरवर्णिका (हीमोग्लोबीन) की मात्रा तथा लाल रक्त कणिकाओं की संख्या में कमी कर देता है। इसकी 3% मात्रा 64 हफ्तों तक चूहों को खिलाने से उनकी वृद्धि तथा हृदय, यकृत एवं गुरदों के भार में कमी आयी। टारट्राजीन के खाने से चूहों में पेचिश हो जाती है। यह रंग एलर्जी भी उत्पन्न कर सकता है।

इसके अतिरिक्त, वरिष्ठ लेखक द्वारा बाजार में बिकने वाले 50 रंगों के नमूनों का परीक्षण करने से पता चला कि कुछ रंगों में हानिकारक एरोमैटिक एमीन की भी थोड़ी मात्रा पायी जाती है जो रंग बनाते समय ही उनमें रह जाती है। इन एमीनों में से अल्फा तथा बीटा नेफ्थिल एमीन तथा बेन्जीडीन प्रमुख हैं। ये एमीन कैंसर कारक होती हैं।

हानिकारक रंगों से निवारण

इस समय जो संस्थाएं मिलावटी खाद्य पदार्थों का परीक्षण करके उनमें मिलावट रोकने के काम में लगी हुई हैं वे केवल रंगों के प्रकार (वैध अथवा वर्जित) का ही परीक्षण करती हैं। कई बार वैध रंग भी खाद्य पदार्थों में एक निश्चित स्वीकार्य मात्रा से अधिक मिलाये जाते हैं जिससे वे हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं। बच्चों के खाने योग्य पदार्थों, जैसे मिठाईयों, मीठी गोलियों, टाफी, आइसकैण्डी आदि में वैध रंग भी कम से कम मात्रा में मिलाये जाने चाहिए। जिन रंगों की प्रतिदिन स्वीकार्य ग्रहण मात्रा न ज्ञात हो उन्हें कदापि प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। वर्जित रंगों के अधिक मात्रा में प्रयुक्त किये जाने का मुख्य कारण वैध रंगों का अधिक मूल्य एवं उनका आसानी से छोटे पैक में उपलब्ध न होना है। सरकार ऐसे कदम उठा सकती है जिससे वैध रंग सभी स्थानों पर छोटे-छोटे पैक में कम से कम मूल्य पर उपलब्ध हो सकें। इनके पैकेट पर चेतावनी भी लिखी जा सकती है। साथ-ही-साथ, सभी वैध रंगों की विषाक्तता को भारतीय जलवायु, दैनिक आहार, सामाजिक एवं आर्थिक ढांचे को ध्यान में रखते हुए निर्धारण करने की आवश्यकता है।

संश्लेषित रंगों के विकल्प स्वरूप प्राकृतिक रंगों के विकास की ओर भी ध्यान देना अति आवश्यक है। प्राकृतिक स्रोतों से रंगों को प्राप्त करने संबंधी शोध कार्य औद्योगिक विष-विज्ञान अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ, राष्ट्रीय रसायन प्रयोगशाला, पूना, केन्द्रीय खाद्य प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान मैसूर, तथा केन्द्रीय चमड़ा अनुसंधान संस्थान, मद्रास में हो रहा है। इस दिशा में संतोषजनक प्रगति भी हुई है। ये प्राकृतिक रंग बीटा कैरोटिन, क्लोरोफिल, हल्दी, केसर, फ्लेवोनोएड आदि हैं जो विभिन्न प्रकार के पेड़ पौधों आदि से प्राप्त किये जाते हैं। इन रंगों को प्राप्त करने की तकनीक काफी महंगी पड़ती है। आंत्र द्वारा न अवशोषिक किये जा सकने वाले बहुलक (पालीमेरिक) रंगों का विकास भी अहानिकर रंगों की खोज की दिशा में एक उचित प्रयास है। ये रंग डायनापोल कार्पोरेशन, पाली आल्टो, कैलीफोर्निया द्वारा विकसित किये जा रहे हैं। ये रंग एक निश्चित आकार के होते हैं जिन्हें नियंत्रित बहुलन से बनाया जाता है। आंत्र द्वारा अधिक मात्रा में शोषित न होने के कारण इनसे होने वाली हानियां कम होने की संभावना है।

वर्जित रंग मुख्यतया ऐसी वस्तुओं में मिलाये जाते हैं जो लोगों द्वारा बहुत अधिक मात्रा में प्रयोग की जाती हैं जैसे पिसे मसाले (हल्दी, लाल मिर्च, हींग आदि) तथा दालें। मसाले साबुत खरीदे जा सकते हैं तथा दालों को पकाने से पहले अच्छी प्रकार से कई बार पानी में धो लेना चाहिए। अधिकतर रंग पानी में घुलनशील होते हैं तथा बार-बार धुलने से अधिकतम मात्रा में बाहर निकल जाते हैं।

खाद्य पदार्थों में वर्जित रंगों की मिलावट रोकने के लिए खाद्य मिलावट निवारण अधिनियम 1954 के नियमों का पालन कराने हेतु उत्तरदायी संस्थाएं और कड़े कदम उठा सकती हैं। सामाजिक कार्यकर्ता, वैज्ञानिक एवं जागरूक नागरिक उपभोक्ता संरक्षण संघों के माध्यम से तथा आकाशवाणी, दूरदर्शन, सामाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं में वार्ता, विज्ञापन तथा लेख के माध्यम से जन जागरण कर सकते हैं। शहर, ब्लाक तथा गांव स्तर पर गोष्ठियां करके भी आम जनता को खाद्य पदार्थों में मिलावट संबन्धी जानकारी देकर उन्हें सजग किया जा सकता है। • • •

कृत्रिम रूप से अधिमिश्रित संरचनाएं : अर्द्धधातु तकनीक में नये आयाम

डा. गोविंद प्रसाद कोठियाल
तकनीकी भौतिकी एवं प्रोटोटाइप इंजीनियरी प्रभाग
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र
बम्बई - 400 085

आधुनिक इलेक्ट्रानिकी के क्षेत्र में अर्द्धधातु तकनीक की महत्ता से तो हम सभी परिचित हैं। यूं तो सिलिकन आज भी इलेक्ट्रानिकी घटकों के निर्माण में एक मौलिक पदार्थ के रूप में प्रयुक्त हो रहा है, परंतु जब अत्योच्च गति वाली इलेक्ट्रानिकी एवं प्रकाश इलेक्ट्रानिकी युक्तियों का प्रसंग आता है तो गैलियम आर्सेनाइड तथा उनसे संबंधित अन्य यौगिकों के संयोजन से बनी विशिष्ट संरचनाओं का उपयोग देखने को मिलता है। ऐसी संरचनाओं का निर्माण आज आण्विक पुंज एपीटैक्सी जैसी परिष्कृत क्रिस्टल संवर्धन तकनीक के उपलब्ध हो जाने से हो पा रहा है। इन्हीं कुछ संरचनाओं की जानकारी प्रस्तुत लेख में दी जा रही है।

प्रकाश संचरण की परिकल्पना निसंदेह एक क्रांतिकारी घटना मानी जा सकती है। अगर हम इतिहास के पृष्ठों पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि वर्ष 1878 में अलैक्जैंडर ग्राहम बैल ने टेलीफोन के आविष्कार के दो वर्ष बाद ही एक ऐसा यंत्र बनाया था जिसे फोटोफोन कहा गया। इसमें एक ध्वनि अधिमिश्रित (मॉडुलेटेड) दर्पण था जिसके द्वारा सूर्य के प्रकाश को परावर्तित कर संसूचक पर संकेंद्रित करके एक विद्युत धारा उत्पन्न की गयी थी जिस से टेलीफोन को संचालित किया जा सका। यह एक रोचक घटना है कि वर्ष 1880 में अप्रैल-फूल के दिन ग्राहम बैल ने सूर्य के प्रकाश की मदद से एक समाचार को 213 मीटर की दूरी तक भेजकर प्रथम बेतार संप्रेषण की परिकल्पना को साकार कर दिखाया। ग्राहम बैल ने स्वयं फोटोफोन को अपना सर्वोत्तम आविष्कार बताया था, हालांकि बैल इसको एक कारगर युक्ति सिद्ध करने के लिए बहुत इच्छुक रहे तथा उन्होंने हर संभव प्रयास भी किये, परंतु समुचित संप्रेषण माध्यम (वेव गाइड) एवं लेसर जैसे प्रकाश स्रोत के अभाव में वे कुछ नहीं कर पाये। लगभग एक सौ वर्षों तक यह आविष्कार व्यावसायिक अनुप्रयोग हेतु उपयोगी न बन सका। इस दिशा में गति तब आयी जब प्रोफेसर काओ तथा होखम ने वर्ष 1966 में तुंत कांच को संचरण माध्यम के रूप में उपयोग करने की बात कही। उस समय सर्वोत्तम गुणता वाले कांच में प्रकाश सिग्नल का अवशोषण 200 डेसीबैल प्रति किलोमीटर था। परंतु आज की स्थिति में ऐसे तंतु-माध्यम सामने आ चुके हैं जिनमें सिग्नल ह्रास एक डैसीबैल प्रति किलोमीटर से भी कम हो गया है तथा 100 किलोमीटर पर ही पुनरावर्तक लगाने की आवश्यकता पड़ती है। साथ ही, सूचना संप्रेषण एवं संग्रहण के लिए समाकलित परिपथ के स्थान पर प्रकाश उत्सर्जक डायोड, लेसर तथा लेसर संसूचक इत्यादि उपयोग में लाये जा रहे हैं। इस संदर्भ में अतिसूक्ष्म इलेक्ट्रानिकी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस कार्य में प्रयुक्त युक्तियों का परिमाप आज एक माइक्रोन (10^{-4} से.मी.) के लगभग पहुंच गया है। इनमें से क्वांटम वैल लेसर, सुपरलैटिस एवलांच फोटोडायोड, पीकोसेकेण्ड प्रकाशसंसूचक, उच्च इलेक्ट्रॉन गम्यता ट्रांजिस्टर इत्यादि ऐसी युक्तियां हैं जो कृत्रिम अधिमिश्रित (मॉडुलेटेड) संरचनाओं पर आधारित हैं, जिन्हें अत्याधुनिक क्रिस्टल संवर्धन तकनीक द्वारा ही निर्मित किया जा सकता है।

कृत्रिम अधिमिश्रित संरचनाएं

यूं तो हम जानते हैं कि पदार्थ परमाणुओं से मिलकर बना होता है। ये परमाणु ठोस पदार्थ में एक सुनियोजित क्रम में होते हैं। जिस प्रकार एक इमारत के लिए आवश्यक मूल इकाई (ईंट) को सुनियोजित ढंग से लगाने पर ही इमारत तैयार होती है, ठीक उसी प्रकार पदार्थ का निर्माण भी एक मूल इकाई (यूनिट सैल) के सुनियोजन (आवर्तीय क्रम) से ही होता है। पदार्थ में इस मूल इकाई का परिमाण अत्यन्त कम (लगभग 3-10 आंग्स्ट्राम; एक आंग्स्ट्राम = 10^{-8} से.मी.) होता है। वस्तुतः, इस मूल इकाई के विशेष संयोजन क्रम पर ही पदार्थ के भौतिक एवं रासायनिक गुणं आधारित होते हैं। इन पदार्थों के उपयोग से तैयार की गयी वे कृत्रिम संरचनाएं जिनमें ऐसा

विशेष आवर्तीय क्रम (पुनरावृति) उत्पन्न किया जाता है तथा जिनका परिमाप पदार्थ के यूनिट सैल के परिमाप से काफी अधिक हो, कृत्रिम अधिमिश्रित संरचनाएं कहलाती हैं। इस प्रकार, कृत्रिम रूप से तैयार किये गये नये पदार्थों के गुण प्राकृतिक रूप से उपलब्ध पदार्थ से पर्याप्त भिन्न हो जाते हैं।

इस प्रकार की संरचनाओं में व्यतिकरण (इंटरफेरैंस) फिल्टर, परावर्तक, एक्सरे विवर्तन ग्रेटिंग, न्यूट्रॉन मोनोक्रोमेटर इत्यादि जैसी बहुसतही (मल्टीलेयर) संरचनाएं काफी समय से प्रचलित हैं, परंतु हाल में तनु फिल्म तकनीक में जो प्रगति हुई, उसकी मदद से ऐसी अधिमिश्रित संरचनाएं तैयार की जा सकती हैं जिनमें प्रमात्रा (क्वांटम) प्रभाव देखा जा सकता है। इनमें इलेक्ट्रानिक एवं प्रकाशीय गुणों को नियंत्रित रूप से परिवर्तित कर के विभिन्न मौलिक एवं रोमांचकारी भौतिक घटनाओं का अध्ययन भी किया जा सकता है।

यद्यपि आज धातु, अर्द्धधातु, कुचालक आदि सभी प्रकार के ठोस पदार्थों के उपयोग से अधिमिश्रित संरचनाएं तैयार की जा सकती हैं, परंतु अर्द्ध चालक संरचनाओं के क्षेत्र में विशेष सफलता प्राप्त हुई है। वैसे, सुपरलैटिस संरचनाओं की सैद्धांतिक परिकल्पना नोबेल पुरस्कार विजेता प्रो. इसाकी एवं त्सू ने वर्ष 1969-70 में प्रस्तुत कर दी थी और इसका प्रयोगात्मक स्वरुप एक वर्ष के भीतर ही अमरीका की बैल प्रयोगशाला एवं आई. बी. एम. में अर्द्धचालक गैलियम आर्सेनाइड एवं अल्यूमिनियम गैलियम आर्सेनाइड पदार्थों के उपयोग से तैयार कर लिया गया था।

क्वांटम वैल तथा सुपरलैटिस

इस लेख में हम जिन कृत्रिम अधिमिश्रित संरचनाओं का विवेचन कर रहे हैं वे हैं क्वांटम वैल तथा सुपरलैटिस और उनके संयोजन से बनी संरचनाएं एवं युक्तियां। एक क्वांटम वैल दो अलग-अलग बैंड गैप के पदार्थों की बहुत पतली तहों को एक के ऊपर दूसरे को लेपित करके बनता है। इसे "वैल" इसलिए कहते हैं कि इससे कुएं की तरह एक गहराई का आभास होता है तथा क्वांटम इसलिए कि इन तहों की मोटाई डी-ब्रागली तरंग दैर्घ्य से कम होती है। जैसा कि चित्र-1 से स्पष्ट है कि कम बैंड गैप पदार्थ (B) के दोनों ओर अधिक बैंड गैप के पदार्थ (A) की तहों के होने से एक कुएं के समरुप बैंड संरचना बनती है। वैज्ञानिकों के विचार में यह दो अलग-अलग

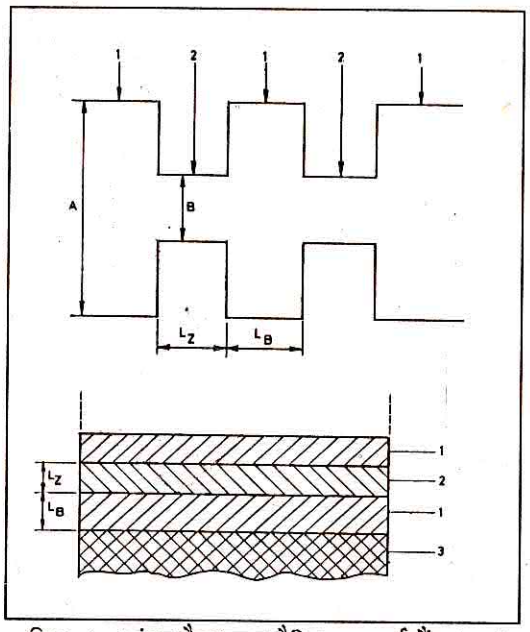

चित्र - 1 : कांटम वैल/सुपर लैटिस का ऊर्जा बैंड (ऊपर) तथा फिल्म संरचना का क्रम (नीचे) : 1) अवरोधक तह 2) सबस्ट्रेट, यहां पर L_Z वैल-तह की मोटाइ तथा L_B अवरोधक-तह की मोटाई है।

बैंडगैप के पदार्थों के आपसी मिलन के उपरांत बनी नयी ऊर्जा बैंड संरचना है। क्वांटम वैल की गहराई (अवरोध) दोनों पदार्थों के बैंड गैप के अंतर से संबंधित होती है। कम बैंड गैप वाले पदार्थ को "वैल" पदार्थ तथा अधिक बैंड वाले पदार्थ को "बैरियर" (अवरोध) पदार्थ कहा जाता है। इसी प्रकार, इन की मोटाइयों को L_Z (वैल की मोटाई) तथा L_B (बैरियर की मोटाई) से दर्शाते हैं। इन दोनों मोटाइयों के योग ($L_Z + L_B$) को आवर्तता कहते हैं। यदि इसी प्रकार कम तथा अधिक बैंड गैप के पदार्थों के एकांतर समायोजन को बनाते चलें तो एक बहुक्वांटम वैल/सुपरलैटिसेस संरचना बन जाती है। ध्यान रहे कि क्वांटम वैल तथा सुपरलैटिस में एक विशेष अंतर होता है जो बैरियर (अवरोधक) की मोटाई L_B से संबंधित होता है। यदि L_B का मान L_Z से काफी अधिक रहे ताकि एक वैल दूसरे वैल से पारस्परिक क्रिया न कर पाये, तो यह संरचना क्वांटम वैल कहलाती है क्योंकि इसमें पदार्थ के गुणों की द्विविमीय प्रकृति का ह्रास नहीं हो पाता है। इसके विपरीत, यदि L_B का मान L_Z की अपेक्षा काफी कम हो तो वैल के आपस में

क्रियाशील होने पर गुण कुछ त्रिविमीय प्रकृति की ओर अग्रसर होने लगते हैं।

किसी संकाय में क्वांटम प्रभाव के दृष्टिगत होने के लिए हमें उसे क्वांटम परिमाप (यानी वह अति सूक्ष्म परिमाप जो डी-ब्रागली तरंग दैर्घ्य से संबंधित होता है) पर ले जाना पड़ता है। हम जानते हैं कि 20वीं शताब्दी के आरंभ में क्वांटम सिद्धांत को मान्यता प्राप्त होने पर प्रकाश (विद्युत-चुम्बकीय तरंग) की द्वैत प्रकृति (तरंग एवं कण) को स्वीकार किया गया (मैक्स प्लांक,1901)। तदुपरांत 1924 में फ्रांसीसी वैज्ञानिक लुई डी ब्रागली ने भी यह सुझाव दिया की उचित परिस्थितियों में पदार्थ भी जो कि साधारणतः अणु,परमाणु,इलेक्ट्रान,प्रोटान तथा अन्य इसी तरह के कणों से बना होता है, तरंग के रूप में व्यवहार करता है तथा इन कणों की तरंग दैर्घ्य निम्न लिखित सूत्र द्वारा निकाली जा सकती है।

$$\lambda = \frac{h}{p} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (1)$$

यहां पर h, प्लांक नियतांक है जिसका मान 6.52×10^{-27} अर्ग-सेकंड होता है तथा p, गतिशील कण का संवेग है। कण का संवेग कण के द्रव्यमान एवं गति के गुणनफल के बराबर होता है। कण के संवेग का मान किसी अर्द्ध चालक के लिए निम्नलिखित एक अन्य सूत्र द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।

$$\frac{p^2}{2m^*} = kT \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (2)$$

यहां पर m* कण का प्रभावी द्रव्यमान है जो इस बात पर निर्भर करता है कि वह कण उस पदार्थ के ऊर्जा बैंड में कहां स्थित है और चूंकि प्रत्येक अर्द्ध चालक के ऊर्जा बैंड की संरचना भिन्न होती है, अतः, यह मान पदार्थ के साथ परिवर्तनशील है,जैसे गैलियम आर्सेनाइड में इलेक्ट्रान के लिए यह मान इलेक्ट्रान के स्वतंत्र द्रव्यमान (9.1×10^{-28} ग्राम) का 0.067 गुना तथा सिलिकान में यह 0.2 गुना होता है। इस आधार पर कमरे के तापमान पर तरंग दैर्घ्य का मान लगभग 20 नैनोमीटर (60 परमाण्विक व्यास) आता है। अतः, संकाय का परिमाप इससे कम होने पर क्वांटम प्रभाव स्पष्ट हो सकते हैं। परंतु यह सीमा इस बात पर भी निर्भर करती है कि पदार्थ की गुणता कैसी है। उच्च गुणता (मणिभीय दोषमुक्त) वाले पदार्थ में क्वांटम प्रभाव अधिक बड़े परिमाप में भी मिल सकता है।

अर्द्धधातु सुपरलैटिस / क्वांटम वैल

अर्द्धधातु पदार्थों के उपयोग से दो प्रकार की अर्द्धमिश्रित संरचनाएं संभव हैं, (1) डोपिंग सुपरलैटिस, और (2) रासायनिक रचनात्मक सुपरलैटिस। डोपिंग सुपरलैटिस में एन एवं पी डोपेंट (अशुद्धियों) को एकांतर क्रम में डालते हैं जिससे एन-पी-एन-पी- जैसी संरचना तैयार हो जाती है,जबकि रचनात्मक (कम्पोजीशनल) सुपरलैटिस में कम तथा अधिक बैंड गैप वाली अर्द्धधातुओं को एकांतर क्रम में उचित मोटाई (L_Z एवं L_B) तक लेपित करके अर्द्धमिश्रित संरचना तैयार की जाती है। इन दोनों प्रकार की सुपरलैटिस की सरल ऊर्जा बैंड संरचना को चित्र-2 में रेखांकित किया गया है। स्पष्ट है कि एकांतर क्रम में अशुद्धियों को डालने अथवा भिन्न बैंड गैप के पदार्थों को लेपित करने से पदार्थ में जिस सुपरलैटिस विभव का समावेश होता है उससे मूल पदार्थ की बैंड संरचना में परिवर्तन आजाता है। यह परिवर्तन सुपरलैटिस विभव के

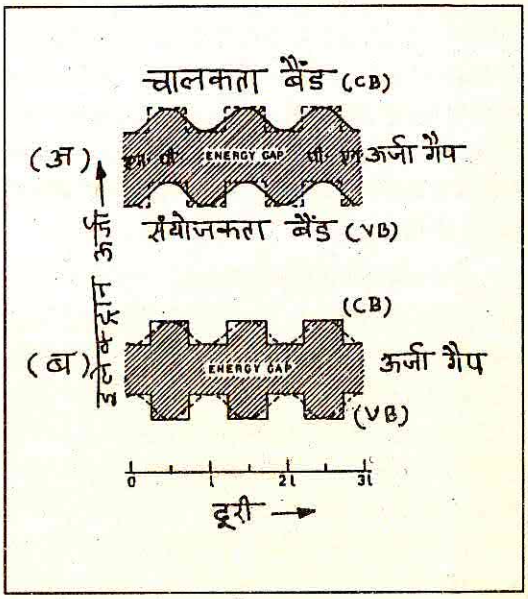

चित्र - 2
दो प्रकार की सुपरलौटिसों के ऊर्जा बैंडों में अंतर, (अ) डोपिंग सुपरलैटिस और (ब) कंपोजिशनल (संरचनात्मक) सुपरलैटिस

परिमाप तथा आवर्तता पर आधारित होता है। चूंकि सुपरलैटिस विभव की आवर्तता मूल लैटिस नियंताक से काफी अधिक होती है, इसलिए कुछ नये सूक्ष्म ऊर्जा बैंड क्षेत्र (मिनी जोन्स) बन जाते हैं, जो पदार्थ में कई नयी एवं रोमांचकारी घटनाओं को जन्म देते हैं। इस प्रकार की संरचनाओं के प्रयोग से आज नये उच्च क्षमता वाले लेसर, संसूचक, अतितीव्र ट्रांजिस्टर इत्यादि निर्मित किये जा रहे हैं। इनमें से कुछ की चर्चा यहां की जाएगी।

अब प्रश्न उठता है कि ऐसी संरचनाएं जिनमें क्वांटम प्रभाव देखा जा सकता है, पदार्थ का बैंड गैप एक नियंत्रित रूप से परिवर्तित किया जा सकता है और जिनमें एक-विमीय, द्वि-विमीय गुणों का उपयोग हो सकता है इत्यादि, कैसे निर्मित की जा सकती हैं। यूं तो ये प्रश्न काफी जटिल से लगते हैं, परंतु वैज्ञानिकों ने इनका समाधान खोज निकाला है। आज यह सब संभव हो पाता है एक ऐसे संयंत्र के माध्यम से जिसे अमरीका की "बैल प्रयोगशालाओं" में डा. अल्फ्रेड चो ने वर्ष 1970 में तैयार किया था। इसका नाम है आण्विक पुंज ऐपिटैक्सी संयंत्र (चित्र-3)। इसके द्वारा पिछले दो दशकों में अर्द्धधातु भौतिकी से संबंधित विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में कल्पनातीत शोध कार्य हुए हैं तथा कई प्रकार की नयी पीढ़ी के संयंत्र एवं युक्तियां बनायी जा सकी हैं। यहां तक कहा जाता है कि इस संयंत्र से हम उस प्रकार की पदार्थ संरचनाएं तैयार कर सकते हैं जो न तो प्रकृति में उपलब्ध हैं न ही प्रकृति इनके निर्माण के बारे में जानती है।

आण्विक पुंज ऐपिटैक्सी (चित्र-3) पतले मणिभ बनाने का वह तरीका है जिसमें एक या अधिक तत्वों की ऊष्मीय पुंज (आण्विक/परमाण्विक पुंज) अत्योच्च निर्वात में एक उच्च ताप पर रखे एकल मणिभीय आधार (सबस्ट्रेट) पर अन्योन्य क्रिया करके एक ऐसी एकल मणिभीय फिल्म बनाते हैं जिसकी मणिभीय संरचना आधार नुमा ही रहे। इसलिए साधारणतः आधार ऐसे पदार्थ का होता है जिसका जालक (लैटिस) नियतांक (कांस्टैंट) लेपित पदार्थ के समान ही हो। ऐपिटैक्सी ग्रीक भाषा के दो शब्दों को मिलाकर बना है। ऐपि + टैक्सी, ऐपि याने ऊपर तथा टैक्सी याने अभिविन्यास (ओरिएंटेशन) अर्थात ऐसी संवृद्धि जिसमें ऊपर की सतह का अभिविन्यास नीचे की सतह जैसा रहे।

उच्च इलेक्ट्रान गम्यता ट्रांजिस्टर

अर्द्धचालक पदार्थ में वाहक की गम्यता उस पदार्थ के उपयोग से बनी युक्ति की तीव्रता/गति को प्रभावित करती है। यह तो विदित है कि पदार्थ में वाहक (इलेक्ट्रान अथवा होल) की गम्यता उपस्थित अशुद्धियों की सांद्रता पर निर्भर करती है। वस्तुतः, ये अशुद्धियां (डोपेंट) पदार्थ में स्वतंत्र वाहकों की संख्या बढ़ाने के लिए डाली जाती हैं, परंतु ये वाहकों के मार्ग में आकर उन्हें प्रकीर्णित कर उनकी गति को कम भी करती हैं। परंतु, यदि किसी तरीके से इन अशुद्धि-परमाणुओं को वाहक के मार्ग से हटा दिया जाय तो गम्यता में अत्यधिक वृद्धि हो जाएगी। इस सिद्धांत का उपयोग हाल ही में आविष्कृत उच्च इलेक्ट्रान गम्यता ट्रांजिस्टर में किया गया है उदाहरणार्थ, अर्द्धधातु गैलियम आर्सेनाइड एवं एल्यूमिनियम गैलियम आर्सेनाइड के उपयोग से तैयार किये गये इस प्रकार के ट्रांजिस्टर में डोपिंग केवल अवरोधक तह एल्यूमिनियम गैलियम आर्सेनाईड में की जाती है। इन तत्वों से केवल इलेक्ट्रान निकल कर गैलियम आर्सेनाइड वैल में पहुंच कर एक द्विविमीय इलेक्ट्रान गैस बनाते हैं। अब इन इलेक्ट्रानों के मार्ग में डोपिंग अशुद्धियां नहीं रहती हैं। फलस्वरुप द्रव नाइट्रोजन के तापमान पर इलेक्ट्रान गम्यता लगभग 10^6 सें.मी.^{2} वोल्ट-सैकंड तक मिलती है। इस प्रकार निर्मित अत्यंत तेज गति वाले ट्रांजिस्टर का उपयोग आज पांचवी पीढ़ी के कंप्यूटरों में हो रहा है।

क्वांटम वैल लेसर

यूं तो हम जानते हैं कि दो अर्द्धचालकों के मिलन से बनी पारस्परिक संधि (जंक्शन) में से उच्च धारा (फारवर्ड करंट) प्रवाहित होने पर कुछ उचित परिस्थितियों में लेसर उत्सर्जन संभव होता है। एक ही अर्द्धचालक में अलग-अलग डोपिंग (एन एवं पी) करने से बने पी-एन जंक्शन को समसंधि कहते हैं। इस संधि से प्राप्त लेसर उत्सर्जन क्षमता विषम संधि (दो अलग अलग बैंड गैप वाले पदार्थों से निर्मित) से प्राप्त लेसर उत्सर्जन क्षमता की अपेक्षा काफी कम होती है। साथ ही, विषम संधि लेसर में ताप स्थिरता एवं विश्वसनीयता भी अधिक पायी जाती है। अतः, साधारणतः विषम संधि वाली संरचना का लेसर उत्सर्जन के लिए उपयोग किया जाता है। आमतौर पर एक लेसर संरचना में एक सक्रिय तह, उसके दोनों ओर क्लैडिंग

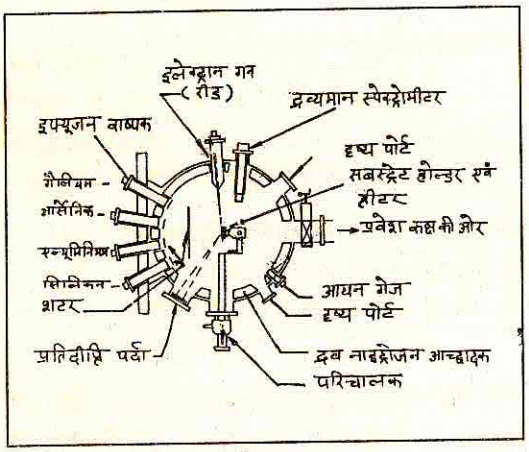

चित्र - 3

आण्विक पुंज एपिटैक्सी संयंत्र के संवृद्धि कक्ष का रेखाचित्र (कक्ष के अंदर निर्वात लगभग 10^{-10} टौर होता है)।

तह तथा सबसे ऊपर कैप तह बनायी जाती है, जबकि सबस्ट्रेट उच्च चालकता वाला मणिभ होता है। क्लैडिंग पदार्थ का गुणांक सक्रिय तह के गुणांक से कम होता है जिससे संपूर्ण आंतरिक परावर्तन प्रभाव द्वारा उत्सर्जित प्रकाश का क्षय न्यूनतम होता है। कैपिंग तह में क्लैडिंग तह की अपेक्षा काफी अधिक डोपिंग की जाती है, ताकि इस पर विद्युत संपर्क आसानी से स्थापित किया जा सके। उत्सर्जित लेसर की तरंग दैर्घ्य सक्रिय तह के बैंड गैप पर निर्भर करती है। इस प्रकार की संरचनाओं में लेसर उत्सर्जन के लिए आवश्यक धारा घनत्व लगभग 10^3-10^4 एंपियर प्रति वर्ग से.मी. होता है, परंतु कृत्रिम अधिमिश्रित संरचना का उपयोग करके सक्रिय तह को साधारण तह के स्थान पर बहुक्वांटम वैल संरचना के समतुल्य बनाया जाता है। इससे उत्सर्जक क्षमता काफी अधिक बढ़ जाती है और लेसर उत्सर्जन लगभग 100 एम्पियर प्रति वर्ग से.मी. के धारा घनत्व सहित संभव हो जाता है। साथ ही, उत्सर्जित लेसर प्रकाश की गुणता भी बढ़ जाती है। निसंदेह, क्वांटम वैल लेसर एक महत्वपूर्ण खोज कही जा सकती है।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि कृत्रिम अधिमिश्रित संरचनाओं का जगत अपने आप में अद्वितीय है। क्वांटम हॉल प्रभाव जैसी घटनाओं का प्रदर्शन अधिमिश्रित संरचनाओं की ही देन है। आज अर्द्धचालक-अर्द्धचालक संरचनाओं से लेकर अर्द्धचालक-अर्द्धधातु अर्द्धचालक-कुचालक, धातु-धातु संरचनाओं तक सभी में अधिमिश्रण (मॉडुलेशन) संभव है। यहां तक कि तनावयुक्त (स्ट्रेन्ड) तह सुपरलैटिस संकल्पनाओं पर आधारित युक्तियों का भी निर्माण हो रहा है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इन संरचनाओं को प्रयोगात्मक स्वरूप प्रदान करने में आण्विक पुंज एपिटैक्सी संयंत्र की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। संसार की कई प्रयोगशालाओं में इन संरचनाओं के निर्माण एवं अनुप्रयोग पर अनुसंधान जोरों-शोरों पर चल रहे हैं। हमारे देश में भी हाल ही में इस दिशा में कार्य प्रारंभ हुआ है। इस प्रकार का संयंत्र हमारे देश में ठोस अवस्था भौतिकी प्रयोगशाला, दिल्ली, आई. आई. टी., मद्रास, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, बंबई, आई. आई. टी., खड़गपुर इत्यादि कुछ जगहों पर उपलब्ध है। आशा की जाती है कि निकट भविष्य में इस संयंत्र के उपयोग से हमारे वैज्ञानिक कुछ महत्वपूर्ण भौतिक शोध एवं उपयोगी युक्तियों को बनाने में सफल होंगें। • • •

दूर संचार के इतिहास की विशिष्टताएं

— डा. अरविन्द कुमार गुप्त

(जुलाई-सितंबर, 1990 अंक से आगे)

1837 विलियम एफ कुक तथा चार्ल्स व्हिटस्टोन ने जून मास में एक पांच-सुई टैलीग्राफ निकाय, जोकि 1.5 कि.मी. की दूरी के बीच कार्य करता था, के लिए ब्रिटिश एकस्व प्राप्त किया। यह दुनिया का पहला व्यावसायिक टैलीग्राफ-निकाय था।

1838 पहली बार पांच-लाइन टैलीग्राफ तार संचरण के लिए ब्रिटेन में एक तार बनाया गया। इसके तारों को एक खांचे में डालकर ओक-लकड़ी के बीच 50 वर्ग मि.मी. अनप्रस्थ-काट के टुकड़े बनाए गए। तारों को खांचे में पतली ओक-लकड़ी डालकर सुरक्षित रखा गया।

(पृष्ठ 43 पर)

मानव जीवन में घासें

डॉ. राज किशोर
अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद-224 001
एवं डॉ. सुरेश सिंह
राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ-226 001

सामान्यतया घास शब्द सुनकर यही विचार आता है कि यह मवेशियों के खाने की सामग्री है। परंतु वनस्पति विज्ञान के वर्गीकरण के अनुसार अनेक प्रमुख खाद्य स्रोत इसी घास-कुल के सदस्य हैं। करीब-करीब सभी प्रमुख अनाज और शक्कर तथा गुड़ इन्हीं घासों से प्राप्त उत्पाद हैं। समाज की कुछ अन्य गतिविधियों में भी इनका प्रयोग होता रहा है।

जब से पृथ्वी की सृष्टि हुई और उस पर विभिन्न जीवों का प्रादुर्भाव हुआ, तबसे आज तक विश्व का प्रत्येक जीव अपने आहार के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विभिन्न वनस्पतियों पर आश्रित रहता आया है। यूं तो सम्पूर्ण जगत का अस्तित्व ही वनस्पतियों पर निर्भर है, परन्तु मानव सभ्यता के विकास और उसके स्थायित्व में पादप जगत के घास-कुल के पौधों का विशेष महत्व है।

घास-कुल (ग्रेमिनी फेमिली) सृष्टि के पुष्पी पादप जगत का एक बृहत एकबीजपत्रीय कुल है। इस कुल में लगभग 620 जेनरा और उनसे सम्बन्धित लगभग 10,000 प्रजातियाँ (स्पीशीज) पायी जाती हैं। विभिन्न घासें इसी कुल के महत्वपूर्ण सदस्य हैं जो विश्व के लगभग 450 लाख किलो-मीटर भूमि पर फैले हुए हैं। घास कुल के पौधों की मानव समुदाय में उपयोगिता इसी बात में आँकी जा सकती है कि मानव जीवन का हर पहलू इस वर्ग के पौधों द्वारा प्रभावित है और उसका जीवन बहुत-कुछ इन्हीं के ऊपर आश्रित है। मानव जीवन में इनकी उपयोगिता का क्षेत्र निरन्तर बढ़ता रहे, सम्भवतः इसीलिए सभ्यता के विकास के साथ-साथ, इस कुल के विकास एवं उपयोगिता के हर पहलू का अध्ययन होता आया है। मानव जीवन में इस कुल की उपयोगिता के कुछ महत्वपूर्ण उदाहरण निम्नवत् हैं :

1. मानव भोजन में घासें

हमारे भोजन का एक प्रमुख भाग हमें घास कुल के विभिन्न पौधों से प्राप्त होता है जिनमें से गेहूँ (ट्रिटिकम एस्टिवम), जौ (हार्डियम वल्गेर), धान (ओराइजा सेटाइवा), मक्का (जिया मेज), ज्वार (सोरघम डॉकना), बाजरा (पेन्नीसेटम टॉयफवाइडिस), साँवा (इक्निक्लोआ फ्रूमेन्टेसिया) आदि प्रमुख हैं। हमारे जीवन के अत्यंत महत्वपूर्ण खाद्य चीनी एवं गुड़, गन्ना (सेकरम ऑफिसिनेरम) से प्राप्त होते हैं। विश्व की बढ़ती हुई जनसंख्या के भोजन की समस्या को सुलझाने के लिए आज संसार के बृहत भू-भाग पर इन खाद्यान्नों की उन्नतिशील खेती की जा रही है। इनमें से कुछ प्रमुख खाद्यान्न जैसे गेहूं, धान और गन्ने की खेती के उच्चतर अध्ययन के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर की विभिन्न शोध संस्थाएं विभिन्न देशों में कार्यरत हैं। भारत में इस प्रकार के शोध कार्यों के लिए "भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद" (आई. सी. ए. आर.) नई दिल्ली, एवं "इन्टरनेशनल क्राप रिसर्च इन्स्टीट्यूट फॉर दी सेमी एरिड ट्रापिक्स (इक्री सैट), आन्ध्र प्रदेश, प्रमुख हैं।

2. पशुपालन में घासें

हम अपने जीवन में अन्न के लिए कृषि पर आधारित हैं और कृषि पशुपालन पर आधारित है। भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहां की खेती की आधारशिला विभिन्न पशु हैं। इसके अतिरिक्त, खाद्यान्नों के साथ-साथ विभिन्न शारीरिक आवश्यकताओं के लिए हमें दूध, घी, मक्खन, माँस तथा अण्डे आदि वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है जो हमें केवल पशु-पक्षियों से ही प्राप्त हो सकती हैं।

भारत में पशुओं को आहार के रूप में मुख्यतः विभिन्न फसलों के बचे हुए भाग ही दिये जाते हैं। इस प्रकार के आहार से यद्यपि उनकी क्षुधा मिट जाती है लेकिन उनके शरीर को वाँछित आवश्यक तत्व और ऊर्जा नहीं प्राप्त हो पाती है जिसके फलस्वरूप उनका स्वास्थ्य खराब हो जाता है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की खोजों के अनुसार हमारे देश में 58% हरे चारे एवं 80% राशन (दाना, खली) की कमी है। हमारे देश में चारागाहों का भी अभाव है जबकि अन्य विकसित देशों में

कृषि के लिए अयोग्य भूमि पर बड़े-बड़े चारागाह बना दिये जाते हैं जिससे पशुओं को वर्ष भर हरा चारा मिलता रहे। पशुओं की खुराक में हरी घासें सबसे उत्तम और सस्ता चारा है। इनमें कच्ची अवस्थाओं में प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है, परन्तु रेशे की मात्रा कम होती है और इनके पोषक तत्व भी आसानी से पच जाते हैं।

सिंचित क्षेत्रों में हरा चारा वर्ष भर उगाया जा सकता है। और असिंचित क्षेत्रों में हरे चारे से "साइलेज" तथा "हे" बनाकर वर्ष भर हरे चारे की पूर्ति की जा सकती है। वर्ष भर हरा चारा देने वाली घास की किस्मों में हाथी घास (पेन्नीसेटम परप्यूरियम), पारा घास (ट्रकियोरिया न्यूटिका), गिनी घास (पेनिकम मैक्जिमम), पूसा जाइंट नेपियर, सिहमाजाति की घासें, लम्पा घास (हेट्रोपोगान कैन्टारटुस) तथा जनेवर (जाइकैन्थियम एनुलेटम) आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त, असिंचित क्षेत्रों तथा चारागाहों में बोने के लिए अंजन (सेन्केरस सिलिएरिस), सेवान (लेसियूरस सिन्डिकस), धामन (सेन्केरस सेटिजेरस) आदि घासें अच्छी पैदावार देती हैं। उष्ण कटिबंध, शीतोष्ण और बर्फीले क्षेत्रों में भी पशुपालन घास पर ही निर्भर करता है। इन क्षेत्रों की घासें उपजाऊ तो कम होती हैं परन्तु उनमें प्रोटीन और पोषकमान अधिक होता है। इन क्षेत्रों की मुख्य घासों में आर्चर्ड घास (डेक्टाइलिस ग्लोमेराटा), मीही घास (फ्रस्टेका प्रेटेन्सिस), केन्टुकी घास (पोवा प्रेटेन्सिस) इत्यादि हैं।

3. मृदा संरक्षण में घासें

भूमि को अपक्षरण एवं कटान से बचाने में घासें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। घास की झकड़ा जड़ें (एडवेन्टीसियस रूट्स) मिट्टी में महीन-महीन जड़ों का जाल बुनकर मिट्टी के कणों को बांधे रहती हैं, जिससे मिट्टी का कटाव काफी कम हो जाता है। भूमि संरक्षण के अलावा ये मिट्टी की उत्पादकता बनाये रखने में भी सहायक होती हैं। हाथी घास, जो कि एक दलहनी घास है, चारे का अच्छा स्रोत होने के साथ-साथ भूमि संरक्षण में भी सहायक होती है। नदियों, तालाबों, सड़कों, रेलवे लाइनों एवं बांध के किनारों को कटाव से बचाने के लिए मूँज (सेकरूम मुंजा), काँस (सेकरूम स्पान्टेनियम) एवं दूब घास (साइनोडान डेक्टाइलान) अधिकता से उपयोग में लायी जाती हैं।

इन घासों के अतिरिक्त, अन्य विभिन्न घासें, यथा सिंकरस सिलियेरिस, लेसाइरस सिंडिकस, पेनिकम टार्जिडम, डाइकैन्थियम एन्नुलेटम आदि घासें भी भूमि संरक्षण में सहायक होती हैं। पहाड़ी स्थानों की भूमि को अपक्षरण एवं भू-स्खलन से बचाने के लिए अरुब्डिनेला नेपालेन्सिस, थिमेडा, एनाथोरा, पेन्नीसेटम, क्लेन्डिरटोनम आदि घासें उपयोग में लायी जाती हैं। इस प्रकार, भूमि संरक्षण में घासों की महत्ता एवं उपयोगिता के कारण ही इन्हें भूमि संरक्षण के कार्यों में विशेष महत्व दिया जाता है।

4. उद्योग में घासें

घास की विभिन्न जातियाँ अनेक प्रकार के व्यापारिक पदार्थों के निर्माण के लिए कच्चे माल का महत्वपूर्ण एवं विशाल भण्डार हैं। इन औद्योगिक महत्व की घासों में सिम्बोपोगान मारटिनी (पाल्मा रोजा) सिम्बोपोगान सोफिया, सि. विन्टेरियेनस, सि. नारडुस, सि. फ्लेक्जुओसस एवं सि. साइट्रेटस तथा वेटिवेरिया जिजानिऑडिस (खस-खस) आदि प्रमुख हैं।

सि.मॉरटिनी को "रोशा घास" या "रूसा घास" भी कहते हैं। इस घास से जो तेल प्राप्त होता है उसे "पाल्मा रोजा तेल" कहते हैं। इसे "भारतीय जिरेनियम तेल" या "रूसा तेल" भी कहते हैं। इस घास से प्राप्त होने वाले तेल में 75 से 90% तक जिरेनियाल पाया जाता है, जबकि सि. सोफिया से प्राप्त होने वाले तेल में जिरेनियाल का प्रतिशत अपेक्षाकृत कम होता है। सि. सोफिया से प्राप्त होने वाले तेल को "अदरख घास तेल" भी कहते हैं। सि. विन्टेरियेनस तथा सि. नारडुस से प्राप्त होने वाले तेल को व्यापारिक भाषा में क्रमशः "जावा टाइप" और "सीलोन टाइप" कहते हैं। जावा टाइप तेल एरोमा रसायनों जैसे, साइट्रोनिलाल एवं जिरेनियाल का प्रमुख स्रोत है। सि. फ्लेक्जुओसस एवं सि. साइट्रेटस को क्रमशः "पूर्वी भारतीय लेमन घास" एवं "पश्चिमी भारतीय लेमन घास" भी कहते हैं। इन दोनों घासों को लेमन घास नाम देने का मुख्य कारण इनमें पाये जाने वाले साइट्रल तत्व की अधिकता (75 से 85%) है, जिसके कारण इस तेल से नींबू की गहरी महक आती है। लेमन घास तेल सम्पूर्ण विश्व में निकाले जाने वाले आवश्यक तेलों में प्रमुख एवं महत्वपूर्ण तेल है। वे. जिजानिआइडिस घास से "वेटिवर तेल" प्राप्त होता है। इसकी जड़ों से खस-खस की

चटाइयाँ आदि बनायी जाती हैं जो गर्मियों में मकान आदि को ठण्डा रखने में प्रयुक्त होती हैं।

उपरोक्त सभी तेल बहुत महत्वपूर्ण एवं औद्योगिक महत्व के हैं। औद्योगिक स्तर पर ये सभी तेल विभिन्न कार्यों यथा, औषधि, सुगन्ध एवं सौन्दर्य प्रसाधन सामग्रियों के निर्माण में काम आते हैं।

बांस, घास-कुल का एक महत्वपूर्ण पौधा है। राष्ट्र के कागज उद्योग में बांस कच्चे माल की आपूर्ति का एक प्रमुख स्रोत है। बैब घास (यूलेलियाप्सिस बाइनेटा) भी कागज उत्पादन के लिए कच्चे माल का एक अच्छा स्रोत है। इसी प्रकार, रस्सी उद्योग में कच्चे माल की आपूर्ति के लिए विभिन्न घासें महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

5. धार्मिक अनुष्ठान में घासें

हिन्दू कर्मकाण्डों में विभिन्न घासों यथा, दूब, मूंज, कुश और बांस का अत्यधिक महत्व है। हिन्दू धर्म में समस्त वैवाहिक रीतियाँ मूँज और बाँस द्वारा निर्मित छप्पर, जिसे "माड़व" कहते हैं, के नीचे प्रतिपादित की जाती हैं, तथा वैवाहिक रीतियों को सम्पन्न कराते समय दूब घास एवं कुश का उपयोग अवश्य किया जाता है।

6. अन्य विविध उपयोग

घासों की उपरोक्त उपयोगिताओं के अलावा भी सामान्य जन-जीवन में घास की अन्य बहुत सी जातियों का अत्यधिक महत्व है। घास के पौधे वनस्पतिविहीन क्षेत्रों में अन्य वनस्पतियों की तुलना में शीघ्रता से पनपते हैं जिससे वनस्पतिविहीन भूमि में घासें उगाकर भूमि को ऊसर होने से बचाया जा सकता है। मग्गर या फारगलू बाँस (डेंड्रोक्लेमस हैमिल्टोनी) हमेशा हरा रहने वाला लम्बा मजबूत बाँस है। इसकी हरी पत्तियां पोषक और स्वादिष्ट होने के कारण दुधारु पशुओं के लिए एक उत्तम चारा है। इसके झुरमुट से भूक्षरण भी रूकता है। बाँस की दो अन्य किस्मों, बाँज या बोतल बाँस (डेन्ड्रोक्लेमस स्ट्राइक्टस) और नल या धरन्ज बाँस (बैम्बूसा नूतान्स) की पत्तियाँ भी पूरक चारे के रूप में प्रयोग की जाती हैं। घास की कुछ जातियाँ धातु संकेतक का कार्य भी करती हैं, जिनकी सहायता से भूगर्भ में उपस्थित विभिन्न धातुओं की उपस्थिति का पता लगाया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में घास की कुछ जातियाँ जैसे, काँस, मूंज आदि छप्पर आदि बनाने के काम में अधिकता से प्रयुक्त होती हैं। कुछ घासें जैसे पामा घास, जाइन्ट स्टार घास., सूडान घास, रोड्सीऔर बैटल आदि लवणीय भूमि में भी शीघ्रता से उग जाती हैं। इस प्रकार ये घासें उस भूमि की लवणता दूर करके उसे उपजाऊ बना देती हैं।

दूब घास की कुछ किस्में लॉन में सजावट और सुन्दरता के लिए उगायी जाती हैं। औद्योगिक नगरों में घासें दूषित वायु (कार्बन डाईक्साइड) और शुद्ध वायु (ऑक्सीजन) की मात्रा में प्राकृतिक सांमजस्य बनाये रखकर वायु प्रदूषण को कम करने में सहायक होती हैं। कुछ घासों से कागज, चटाइयाँ और दैनिक उपयोग की कलात्मक वस्तुएं भी बनायी जाती हैं।

इस प्रकार, घास की इन विविध उपयोगिताओं को देखते हुए यह कहना पड़ता है कि मानव घास-कुल का बहुत आभारी है क्योंकि इस कुल से उसके जीवन की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति होती है और इसके सहयोग से वह सुख-समृद्धि की ओर अग्रसर होता जा रहा है। ● ● ●

हिन्दी की सर्वप्रथम विज्ञान-पत्रिका

विज्ञान (मासिक)

75 से भी अधिक वर्षों से निरंतर प्रकाशित

: संपर्क सूत्र :
विज्ञान परिषद, महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद - 211 002

द्वयलव गणित क्या है ?

श्याम लाल धीमान,
प्रवक्ता भौतिकी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटद्वार,
पौड़ी गढ़वाल (उ.प्र.)-246149

हम दैनिक जीवन में गणना के लिए दशमलव संख्या पद्धति का उपयोग करते हैं। इस संख्या पद्धति में किसी संख्या को 0, 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, एवं 9 प्रतीकों से प्रदर्शित किया जाता है। चूंकि इस पद्धति में 10 प्रतीकों का प्रयोग होता है, अतः इसे दशमलव संख्या पद्धति कहते हैं। द्वयलव पद्धति में संख्या को निरूपित करने के लिए केवल दो, 0 व 1 प्रतीक ही होते हैं। इसीलिए इसे द्वयलव या बाइनरी संख्या पद्धति कहते हैं। 0 एवं 1 को बाइनरी डिजिट (संक्षेप में बिट) अथवा द्विक कहते हैं।

द्वयलव संख्याओं की दशमलव संख्याओं से भिन्नता दर्शाने के लिए उन्हें कोष्ठक में बन्द कर कोष्ठक के बाहर दो से अंकित कर दिया जाता है, जैसे, $(11)_2$। जिस प्रकार दशमलव संख्याओं में अंकों का स्थानीय मान बांयी ओर क्रमशः बढ़ने पर 10 गुना होता जाता है, उसी प्रकार द्वयलव संख्या पद्धति में द्विकों का स्थानीय मान 2 गुना बढ़ जाता है। इस प्रकार द्वयलव संख्या में दांयीं से बांयीं ओर क्रमशः बढ़ने पर स्थानीय मान $2^0, 2^1, 2^2, 2^3, 2^4$ आदि के अनुसार होंगे। यदि हम $(11110)_2$ को दशमलव संख्या में बदलना चाहें तो इसके लिए हमें द्विकों के निजी एवं स्थानीय मानों के गुणनफलों का योग प्राप्त करना होगा। इस प्रकारः

द्वयलव संख्या	निजीमान x स्थानीय मान	दशमलव संख्या में गुणनफल
1 1 1 1 0		
	0×2^0	= 0
	1×2^1	= 2
	1×2^2	= 4
	1×2^3	= 8
	1×2^4	= 16
	योग	= 30

अतः, $(1110)_2$ संख्या दशमलव संख्या पद्धति में 30 के तुल्य होती है।

दशमलव संख्याओं की भाँति द्वयलव संख्याओं को भी जोड़, घटा, गुणा अथवा भाग किया जा सकता है। यहां इन क्रियाओं को उनके नियमों के साथ क्रमशः दिया जा रहा है।

जोड़ : द्वयलव संख्याओं को जोड़ने के लिए निम्न 4 नियम होते हैं -

(1) 0 + 0 = 0
(2) 0 + 1 = 1
(3) 1 + 0 = 1
(4) 1 + 1 = 10

मान लीजिए हमें $(1101)_2$ तथा $(1011)_2$ को जोड़ना है। हम इन द्वयलव संख्याओं को दशमलव संख्याओं की भाँति ऊपर नीचे रखकर जोड़ते हैं।

	1	1	0	1	
+	1	0	1	1	
			1	0	1 + 1 = 10
		1	0		1 + 1 = 10
	1	0			1 + 1 = 10
	1				1 + 1 + 1 = 10 + 1
1					= 11
1	1	0	0	0	(यहाँ कोष्ठकों में हासिल रखे गये हैं)

अतः, प्राप्त द्वयलव योगफल $(11000)_2$ है जो दशमलव संख्या पद्धति में 24 के तुल्य है। चूंकि $(1101)_2 = 13$ और $(1011)_2 = 11$, अतः योग की तुरन्त जाँच हो जाती है।

इसी प्रकार :

```
  1 1 1 1
+ 1 0 1 0
-------
1 1 0 0 1
```

घटाव : योग के समान घटाव की क्रिया के भी निम्न चार नियम होते हैं।

(1) 0 - 0 = 0
(2) 1 - 0 = 1
(3) 1 - 1 = 0
(4) 1 0 - 1 = 1
(अगले स्थान से द्विक '1' उधार लेने पर)

घटाव की प्रक्रिया समझने के लिए मान लीजिए हमने द्वयलव संख्या $(10110)_2$ मे से $(1011)_2$ को घटना है। समझने के तौर पर हम इस प्रक्रिया को निम्न प्रकार 5 चरणों में पूरा करते है :

पहला चरण	0 1 0 1 1 0 − 1 0 1 1 1	नियम (4) से अगले स्थान का द्विक '0' शेष रहा।
दूसरा चरण	0 0 1 0 1 1 0 − 1 0 1 1 1 1	नियम (4) से तीसरे स्थान से द्विक '1' उधार लिया गया है। अतः तीसरे स्थान पर द्विक '0' शेष रहा।
तीसरा चरण	0 0 1 0 1 1 0 − 1 0 1 1 0 1 1	नियम (1) से 0 - 0 = 0
चौथा चरण	0 0 0 1 0 1 1 0 − 1 0 1 1 1 0 1 1	नियम (4) से पाँचवे स्थान से द्विक '1' उधार लिया गया है। (10 - 1 = 1)
पाँचवा चरण	0 0 0 1 0 1 1 0 − 1 0 1 1 0 1 0 1 1	पाँचवे स्थानपर द्विक '0' होने से नियम (1) से 0 - 0 = 0

इस प्रकार, प्राप्त फल $(1011)_2$ है जो दशमलव संख्या पद्धति में 11 के तुल्य है। इसकी जाँच तुरन्त की जा सकती है।

गुणा : द्वयलव संख्या पद्धति में इसके भी चार नियम होते हैं। ये निम्न है :

(1) 0 x 0 = 0
(2) 0 x 1 = 0
(3) 1 x 0 = 0
(4) 1 x 1 = 1

यहाँ गुणा की प्रक्रिया को $(1111)_2$ तथा $(101)_2$ की गुणा करके कमझाया जा रहा है। गुणा दशमलव संख्याओं की तरह ही होती है।

```
    1 1 1 1
  x   1 0 1
-----------
    1 1 1 1
  0 0 0 0 x
1 1 1 1 x
-----------
1 0 0 1 0 1 1
```

अतः, प्राप्त गुणनफल $(1001011)_2$ प्राप्त होता है जो दशमलव संख्या 75 के तुल्य है। चूंकि $(1111)_2 = 15$ और $(101)_2 = 5$, अतः गुणनफल की जाँच तुरन्त हो जाती है।

भाग : भाग की प्रक्रिया के दो नियम होते है :

(1) 0 ÷ 1 = 0
(2) 1 ÷ 1 = 1

0 ÷ 0 तथा 1 ÷ 0 का आकलन नहीं किया जा सकता है। यह प्रक्रिया भी दशमलव संख्याओं की भाग की तरह ही सम्पन्न होती है। द्वयलव संख्याओं की भाग की प्रक्रिया में पहाड़ा '0' या '1' बार चलता है। निम्न उदाहरण में

$(10101)_2$ को $(111)_2$ से भाग देकर यह प्रक्रिया समझायी गयी है।

```
    011
111) 10101
   - 111
   -----
     111
     111
   -----
       x
```

भागफल $(11)_2$ प्राप्त होता है जो दशमलव संख्या ३ के तुल्य है। चुंकि $(10101)_2 = 21$ और $(111)_2 = 7$, अतः प्राप्त भागफल सही है।

द्वयलव गणित कंप्युटर के लिए अति उपयोगी सिद्ध हुआ है। क्योंकि कंप्यटर कोई भी बात केवल दो प्रतीकों की सहायता से ही समझता है। फ्लिप-फ्लाप परिपथ कंप्युटर की मैमोरी का भी कार्य करते हैं। उपरोक्त गणितीय प्रक्रियाओं में योग की प्रक्रिया ही मुख्य है। चूंकि कंप्यूटर द्वयलव अंक प्रणाली ही समझता है, अतः दशमलव संख्याओं को द्वयलव संख्या में रूपान्तरित लेता है। इस प्रक्रिया को कोडिंग कहा जाता है। गणना करने के पश्चात यह प्राप्त प्रतिफल को जो कि द्वयलव संख्या ही होता है, पुनः दशमलव संख्या में परिवर्तित कर लेता है। इसे 'डिकोडिंग' करना कहा जाता है।

• • •

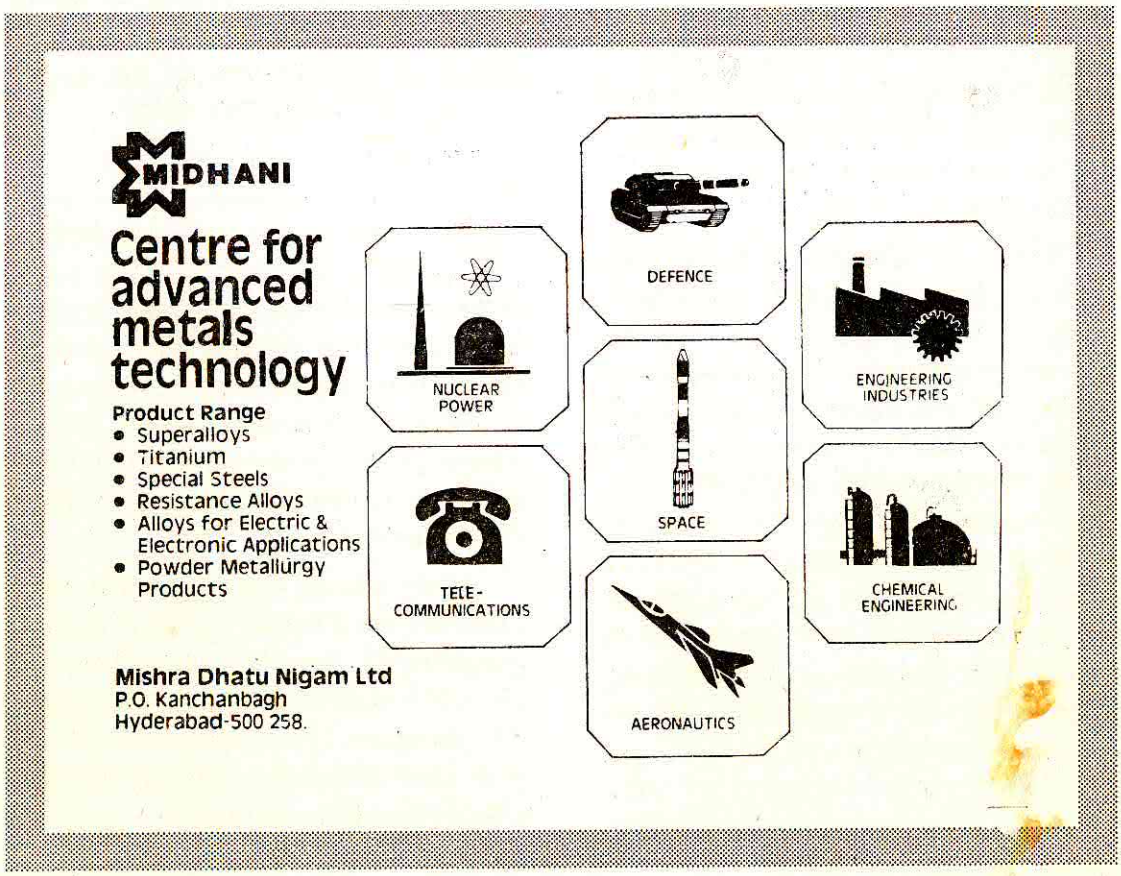

चयापचयन प्रक्रिया का एक रूप

ओम प्रकाश खंडेलवाल,
67 शिक्षक नगर, इंदौर-452 005

जीव-उत्पत्ति एवं विकास में भाग लेने वाली जटिलतम प्रक्रियाओं में चयापचय प्रक्रिया की अपनी एक विशेष भूमिका है। इस प्रक्रिया से जुड़े कुछ भौतिक तथ्यों का विवेचन इस लेख में दिया गया है।

एच. एन. होरोविज ने 1945 में चयापचयन (मेटाबोलिज्म) के उत्पन्न होने के विषय में एक बहुत ही दिलचस्प मॉडेल प्रस्तुत किया है। अगर देखा जाये तो पूर्ण रूप से एक जैविक सेल का पृथ्वी पर उत्पन्न होना बहुत दिलचस्प एवं जटिल क्रियाओं से परिपूर्ण है। हमारी मुश्किल यह है कि एक कोषाणु के जीव-कोषों में इतनी अधिक सामग्री जीव रासायनिक (बायोकेमिकल्स) प्रक्रियाओं के रूप में उपलब्ध है, जिसे एक ही व्यक्ति के द्वारा समझ लेना बहुत ही कठिन है। इसके अतिरिक्त, हमारा ज्ञान अभी अधूरा है। हम जीवन उत्पत्ति के बारे में कई प्रकार की परिकल्पनाएं कर चुके हैं, क्योंकि यह घटना काल के अनुसार आज से लगभग 2.5 से 3 अरब वर्ष पूर्ण घटी होगी। इस लेख में हम संपूर्ण कोषाणु की उत्पत्ति के बारे में नहीं देख रहें हैं बल्कि हम सिर्फ इतना जानने का प्रयास करेगें कि प्रथम बार एक जीव कोषा में चयापचय की क्रिया किस तरह शुरु हुई होगी।

होरोविज की परिकल्पना के अनुसार चयापचयन प्रक्रिया (मेटाबोलिक पाथवे) की शुरूआत आधुनिक जीवों में चल रही दिशा के विपरीत दिशा से शुरु हुई होगी। इस बात से यह स्पष्ट होता है कि प्राकृतिक जीव को जब-जब जिन-जिन प्रकिण्वों (इन्जाईम्स्) की आवश्यकता हुई, तब-तब उसने इन्हें संश्लेषित करना सीख लिया। उदाहरण के लिए मान लिया जाय कि एमीनो एसिड (A) एक आवश्यक यौगिक है, जो जैवपूर्व रस (प्रीबायलाजिकल सूप) में उपलब्ध है। जब (A) की कमी होने लगी अथवा समाप्ति के नजदीक पहुंच गयी, तब जैविक प्रक्रिया चयनात्मक लाभ वाली दिशा में कार्य करने लगी। अब अगर माध्यम में (A) न होकर उस से मिलता जुलता कोई दूसरा एमिनो एसिड (B) उपलब्ध है तो फिर वह एक दूसरे प्रकार के प्रकिण्व को संश्लेषित करता है जो कि (B) यौगिक को (A) में बदल देने की क्षमता रखता है। इस प्रकार, जैविक प्रणाली में जब-जब (A) की कमी हुई होगी, तब-तब वह (B) को (A) में बदलता रहा। अन्ततः यह प्रक्रिया स्थाई हो गयी। अब उसे जब कभी भी (A) यौगिक प्राप्त करना होगा, तब यह (B) को (A) में बदल कर ही प्राप्त करेगा।

आगे चलते-चलते माध्यम में से (B) योगिक की भी कमी अथवा बिल्कुल उपलब्ध न होने की स्थिति बनती जाती है। अब वह नये सिरे से एक ऐसे प्रकिण्व को संश्लेषित करता है, जिससे कि कोई यौगिक (C) को वह (B)में बदल सके। यह क्रिया भी चयनात्मक लाभ की प्रक्रिया पर आधारित होगी। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है कि (B) से (A) का परिवर्तन स्थाई रुप से स्थान ग्रहण कर चुका है, उसी प्रकार उस कड़ी में अब (C) को (B) में बदल देना भी जुड़ जाता है। यह क्रिया भी अब स्थाई रूप धारण कर लेती है। जैसे,
D –>C –>B –>A (आवश्यक यौगिक)

यह क्रिया बार-बार कार्य में लाये जाने से प्रत्येक पग के बाद जटिल एवं बहु-पगी चयापचयन प्रक्रिया बन जाती है, परन्तु हमें स्पष्ट रुप से इस, प्रक्रिया द्वारा यह ज्ञात नहीं होता है कि पूर्ण प्रणाली किस तरह विकसित हुई होगी। यह कड़ी कई योगिकों को बदलने लग जाती है। होरोविज के मॉडल द्वारा यह बात स्पष्ट होती है कि जैसे ही एक प्रकिण्व उत्पन्न होता है वैसे ही यह उपयोगी कार्य संपन्न करने लगता है। यह एक बहुत महत्वपूर्ण तथ्य है जिससे कि चयापचयन प्रक्रिया का विकास बिना किसी पूर्व योजना के होता चला जाता है। सभी प्रकार के प्रकिण्वों द्वारा चयापचयन को आगे बढ़ाते हुए एक बहु-पगी प्रक्रिया स्थापित हो जाती है।

यह स्पष्ट है कि कोई भी एक प्रकिण्व बायीं दिशा से अथवा मध्य में पहले से चयन नहीं किया जाएगा जब तक कि उसके आगे की क्रिया करने वाला प्रकिण्व पहले से ही उपस्थित न हो। होरोविज की परिकल्पना के अनुसार बहुत से उदाहरणों में जैव-संश्लेषण रास्ते से ये विपरीत दिशा में से आगे बढ़ते हुए अंत में पहले यौगिक पर पहुंच जाते हैं। ऐसे यौगिक तेजी से जैवपूर्व रस में संश्लेषित होते रहते हैं।

इस प्रकार, किसी एक प्रतिलेखन वंषाणु (ट्रांसक्राईविंग जीन) में चार प्रकिण्वों को किसी चयापचयन प्रक्रिया में संश्लेषित करने की क्षमता आ चुकी है। जो क्रिया अब तक (D) –> (A) दिशा में कार्य कर रही थी, वह अब (A) –> (D) दिशा की ओर प्रारम्भ हुई होगी।

मेरे अपने अनुमान से जो प्रकिण्व (आर.एन.ए.पॉलिमेरेज) वंषाणु की प्रक्रिया को प्रारंम्भ करने में लगता था, वह पहले (D) के सिरे से विपरीत दिशा से वंषाणु संश्लेषित (D –> A) करना प्रारम्भ करता था। जब एक प्रकार की संपूर्ण क्रिया में लगने वाले सभी प्रकिण्व पूर्ण रुप से स्थापित हो जाते है, उसके पश्चात यह प्रकिण्व अब सीधी दिशा में A से D की ओर प्रक्रिया प्रारंभ करने लग जाता है, अर्थात, प्रारम्भ करने वाले वंषाणु पहले D सिरे पर जुड़े थे वह अब A सिरे पर आकर जुड़ जाते हैं।

यह स्मरणीय है कि इस चयापचयन प्रक्रिया में केवल यौगिकों का उत्पादन ही नहीं जुड़ा हुआ है, बल्कि ऊर्जा को ग्रहण करने वाले यौगिकों को भी इसी तरह संश्लेषित किया गया होगा। उच्च ऊर्जा संग्रह करने वाले यौगिकों का जलीयकरण विधि द्वारा निम्न ऊर्जा संग्रह करने वाले यौगिकों में रुपांतरण हुआ होगा, जिससे कुछ स्वतंत्र ऊर्जा किसी दूसरे कोषाणु के लिए अथवा स्वयं कोषाणु के लिए दूसरी क्रिया में आवश्यक होती थी। इस प्रकार की प्रक्रिया में भी होरोविज मॉडल का उपयोग किया गया होगा। जब स्वतंत्र ऊर्जा का अभाव हुआ होगा, तब एडिनोसाईन ट्रायफोस्फेट जैसे यौगिकों का उत्पन्न होना आवश्यक हुआ होगा जो कोषाणु में ऊर्जा संग्रह करते हैं। इसी प्रकार, प्यूरीन संश्लेषण प्रक्रिया में भी तीव्र गति से यौगिकों का निम्न यौगिकों में रूपांतरण जलीय माध्यम में हुआ होगा।

हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि उपरोक्त क्रिया जटिलतम क्रियाओं का एक सरल तम रुप है। इस प्रकार जीव की उत्पत्ति में न जाने कितनी और जटिल क्रियाओं ने भाग लिया होगा। निरतंर चल रहे अनुसंधानों के फलस्वरुप प्रकृति के कई गंभीर रहस्य सामने आते रहेगें।

• • •

वैज्ञानिक और उनके आविष्कार

विज्ञान-जगत में प्रगति हुई, विज्ञान-जगत को मान मिला।
सुख-सुविधाएं पायीं सबने, इसलिए उसे यशगान मिला॥

कर्तव्य हमारा है, बढ़कर हम सेवा नित निष्काम करें।
विज्ञान-जगत की अभिलाषा कर पूर्ण, जगत में नाम करें॥

आइए याद उनकी करलें, जिनसे गर्वित विज्ञान सदा।
मरकर भी अमर रहेंगे वे, पायेंगे वे यशमान सदा॥

"कैक्सटन" जर्मनी के वासी, थे प्रिंटिंग प्रेस के निर्माता।
"राइट बन्धु" अमरीका के, थे वायुयान के निर्माता॥

थे "मैकमिलन" स्काटलैंड के वासी, जग-कल्याण किया।
साइकिल उन्होंने बना दिया, विज्ञान-जगत को प्राण दिया॥

स्वीडेन के "अल्फ्रेड नोबेल" ने हैरान जगत को कर डाला।
डाइनामाइट की खोजकर, विस्मय जन-मन में भर डाला॥

अमरीका के थामस एल्वा एडीसन से अंधकार हारा।
कर डाले बल्ब की खोज, अंधेरा भगा धरा से बेचारा॥

जर्मनी निवासी "फेड्रिक" ने माइक्रोफिल्म को खोज लिया।
फारेनहाइट ने थर्मामीटर बीमारों को खोज दिया॥

रोंट्जेन महान वैज्ञानिक एक्स-रे की खोज करे।
जिससे डाक्टर सही-सही रोगों का निदान करे॥

"एल. डेग्यूर" ने फोटोग्राफी खोज, कीर्ति जग की पायी।
अमरीका के "लिपमैन" महोदय ने रंगीन फिल्म बनायी॥

थे "ईस्टमैन" फोटोग्राफी रोल फिल्म के निर्माता।
विज्ञान जगत जिनसे गाता हरदम जिनकी गाथा॥

फ्रांस निवासी मैडम क्यूरी ने रेडियम की खोज की।
इंग्लैंड निवासी "न्यूटन" ने गुरुत्वाकर्षण की सीख दी॥

अमरीका निवासी ए. आइंस्टीन से जगत है हर्षाया।
सापेक्षिकता का नियम उनसे सम्मुख है आया॥

सेमुअल मोर्स की खोज से दुनियाँ को टेलीग्राफ मिला।
ग्राहम बेल जी आगे बढ़े तो हाथों में टेलीफोन मिला॥

— मो. शफीक खाँ

ऊतक संवर्धन के कुछ अनुप्रयोग

अखिलेश कुमार तिवारी
द्वारा : राम प्रताप तिवारी तकनीकी अधिकारी
भारतीय लाख अनुसंधान संस्थान, नामकुम, रांची-834 010

वनस्पतियों की शीघ्र वृद्धि के लिए ऊतक संवर्धन (टिशुकल्चर) एक महत्वपूर्ण तकनीक है जिसके उपयोग से वृक्ष संपदा में काफी बढ़ोत्तरी की जा सकती है। प्रस्तुत लेख में इस विषय पर प्रकाश डाला गया है।

आधुनिक सभ्यता में वनों की बड़ी आवश्यकता है क्योंकि ये केवल जलाने के लिए ईंधन के रूप में लकड़ी ही नहीं देते, बल्कि उद्योग-धंदों के लिए कच्छा माल, पशुओं के लिए चारा, एवं मनुष्यों के लिए कन्द-मूल एवं फल और वस्त्रों के लिए रेशे भी प्रदान करते हैं। वनों को नष्ट होने से रोकने के लिए अधिक संख्या में पेड़ लगाने की आवश्यकता है, परंतु बीज द्वारा इतनी संख्या में पेड़ नहीं उगाये जा सकते, जो वनों को बनाये रखने में सफल हों। ऊतक संवर्धन एक ऐसी तकनीक है जिसमें पौधे के प्रत्येक ऊतक से एक पौधा विकसित किया जा सकता है, और पौधे की एक पत्ती में अनगिनत ऊतक होते हैं जिससे बड़ी संख्या में पौधे प्राप्त किये जा सकते हैं, तथा वनों का विस्तार किया जा सकता है।

ऊतक संवर्धन : वनस्पतियों की चुनी हुई किस्मों की शीघ्र वृद्धि के लिए ऊतक संवर्धन एक महत्त्वपूर्ण तकनीक है। इस पद्धति का प्रयोग मुख्यतः जड़ी-बूटियों से संबंधित वनस्पतियों तथा उद्यान-विज्ञान संबंधी फसलों की व्यापक पैदावार के लिए कई देशों में किया जा रहा है। किसी वनस्पति में एक कोशिका में संपूर्ण जीव दोबारा उत्पन्न करने के लिए सभी आवश्यक अनुवांशिकी जानकारी होती है। यद्यपि जड़ी-बूटियों से संबंधित वनस्पतियों के क्षेत्र में काफी काम किया गया है, इस पद्धति से वृक्षों की उपज को बढ़ाने में पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई है। कुछ वन-विद्या से संबंधित प्रयोगशालाएँ आजकल वृक्ष प्रजनन तथा वृक्ष प्रसार कार्यक्रमों में तेजी लाने के लिए कैलस तथा ऊतक संवर्धन की अपेक्षाकृत नयी पद्धतियों का अनुप्रयोग करने की संभावनाओं का परीक्षण कर रही हैं।

ऊतक संवर्धन कैसे कार्य करता है : ऊतक संवर्धन नियंत्रित अवस्थाओं में वर्धन कोशिकाओं तथा एकल कोशिकाओं से बना होता है। कीटाणु रहित अवस्थाओं में वनस्पति ऊतक का एक छोटा टुकड़ा पौष्टिक तत्त्वों तथा हार्मोन के रासायनिक जीवाणु-पोषक पदार्थ से समाविष्ट एक परखनली में रख दिया जाता है। यह पोषक पदार्थ कटे ऊतक को कोशिका उत्पन्न करने में सहायक होता है जो 'कैलस' नामक एक अव्यवस्थित समूह के रूप में विकसित होते हैं। कैलस की कोशिकाएँ मूल कोशिकाओं की ही तरह की होती हैं। उपयुक्त समय पर कैलस के छोटे-छोटे टुकड़े नयी परखनलियों में उपसंवर्धित किये जाते हैं, जो विभिन्न प्रकार की कोशिकाओं के विकास को आगे बढ़ाते हैं। इस पोषक पदार्थ में, अविभेदित कोशिकाएँ विभेदित होना प्रारंभ कर देती है, जो अंत में छोटे-छोटे पौधों के रूप में विकसित हो जाती हैं। इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि जिन परिस्थितियों में किसी वनस्पति जाति से ऊतकों का पोषण किया जा सकता है, और छोटे पौधों के रूप में विभेदित करने के लिए प्रवृत्त किया जाता है, वे परिस्थितियाँ प्रत्येक जाति के लिए विशिष्ट होती हैं।

कैलस द्वारा उपर्युक्त पुनर्जनन प्रणाली के अतिरिक्त, अन्य रास्ते अपनाये गये हैं। कायिक (सौमैटिक) भ्रूणोद्भव (एम्ब्रियोजेनेसिस) प्रणाली एक ऐसी ही प्रणाली है। जहाँ प्रवर्धन की परंपरागत प्रणालियाँ उपलब्ध हैं, वहाँ भी कायिक भ्रूणोद्भव का विशेष महत्त्व है। उदाहरण के लिए, रबड़ के पेड़ स्तंभ कतरनों के द्वारा प्रवर्धित किये जा सकते हैं, किन्तु यह संतोषजनक नहीं है क्योंकि छोटे पौधों में फलती-फूलती उपज तथा आँधियों में स्थिरता के लिए मुख्य जड़ का होना अत्यंत आवश्यक है। कायिक भ्रूणोद्भव के द्वारा मुख्य जड़ से युक्त क्लोनी पौधे के हिस्से प्राप्त किये जा सकते हैं।

कैलस प्रवर्धनों में कोशिकाओं के छोटे समूहों के द्वारा भ्रूण के समान संरचाएं उत्पन्न होती हैं। ये 'भ्रूणाभ' बीजों से प्राप्त सामान्य भ्रूणाभ की भाँति विकसित होते हैं। यदि इन्हें उपयुक्त उत्तेजक दिया जाए तो सामान्यतः प्राप्त पौधों से अभिन्न पौधे प्राप्त हो जाते हैं। किन्तु, अभी तक केवल कुछ ही

जड़ी-बूटियों से संबंधित वनस्पतियों के लिए ऐसी तकनीकें विकसित की गयी हैं।

ऊतक संवर्धन में जो तकनीकी ज्ञान तथा परिश्रम लगता है, वह केवल वन्य वृक्ष जैसे अत्यधिक कीमती वनस्पतियों के लिए ही उपयुक्त है।

इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस में माइक्रोबायोलॉजी एवं सेल बायोलॉजी विभाग पिछले दस वर्षों से वनवृक्षों के विकास के लिए ऊतक संवर्धन के बुनियादी तथा व्यावहारिक पहलुओं पर अनुसंधान कर रहा है। इस विभाग ने चंदन, गन्धसफेदा (यूकलिप्टस) तथा शीशम आदि के वृक्षों को उत्पन्न करने के लिए व्यापक अध्ययन किया है।

2,4 डाइक्लोरोफेनोक्सीएसीटिक एसिड, एक वृद्धि कर हार्मोन के साथ Ms मिडियम पर 20-25 वर्ष के प्रौढ़ चंदन के वृक्षों के तने के टुकडों से कैलस को बनाया गया। जिब्रेलिक एसिड से Ms मिडियम पर कैलस संवर्धनों द्वारा भ्रूणों का विभेदन प्राप्त किया गया। लैंगिक जनन के बाद उत्पन्न भ्रूणों की ही भाँति ये भ्रूण भी सामान्य पौधे के रूप में विकसित होते हैं। इस प्रणाली द्वारा अत्यधिक संख्या में उत्कृष्ट प्रकार की वनस्पति तैयार की जा सकती है। इस प्रणाली का उपयोग न केवल रोग मुक्त वनस्पति प्राप्त करने के लिए किया जा सकता है, बल्कि अपने अंदर तेल की अधिक मात्रा रखनेवाली तथा अधिक लकड़ी प्रदान करनेवाली वनस्पति प्राप्त करने के लिए भी किया जा सकता है।

चंदन के वृक्षों के सफल प्रयोग के बाद इस संस्थान ने दूसरे वन वृक्षों पर कार्य प्रारंभ कर दिया है। इस प्रयास में इस संस्था द्वारा यूकलिप्टस तथा शीशम के प्रवर्धन के लिए पात्रे प्रणालियों का विकास सफलतापूर्वक कर लिया गया है।

लाभ

(i) थोड़े समय में बहुत-से एक-जैसे पौधे उत्पन्न किये जा सकते हैं।

(ii) त्रिगुणित पौधे भी उत्पन्न किये जा सकते हैं।

(iii) औषधीय पौधों के जिन भागों में क्षाराभ (एल्कोलाएड) पाया जाता है उनसे संवर्धन द्वारा कैलस बनाकर अधिक मात्रा में क्षाराभ प्राप्त किया जा सकता है, जैसे डायोसजेनिन उत्पन्न करने वाले पौधे का कैलस।

(iv) द्रुतगति से विभाजन की आवश्यकता और ऐसे पौधे जो सामान्य वातावरण में उगाये नहीं जा सकते, उन्हें इस विधि से प्राप्त किया जा सकता है।

(v) उपयोगी पौधों का उत्पत्ति संबंधी सुधार।

इस प्रकार, ऊतक संवर्धन मानव के लिए एक अत्यंत उपयोगी तकनीक सिद्ध हुई है। इस तकनीक के द्वारा अब कृषि के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। इस तकनीक द्वारा अब सरसों, अलसी तथा मूँगफली की उपजों से अधिक मात्रा में तेल प्राप्त हुआ है, जिससे देश में तेल के आयात में कमी आयी है। इस विधि को अपनाकर अधिक संख्या में पौधे उत्पन्न किये जा रहे हैं। इन पौधों का उपयोग वनों के क्षेत्रफल को बढ़ाने के लिए किया जा रहा है। पौधों की सहायता से मरुस्थल के बढ़ने को रोका जा रहा है जिससे थार का मरुस्थल सीमित रहे।

पौधों की सहायता से कई क्षेत्रों में मिट्टी के कटाव को रोका जा रहा है जिससे भूमि का ऊपरी उपजाऊपन बना रहे। ऊतक संवर्धन तकनीक का उपयोग जड़ी-बूटियों के विकास के लिए विशेष रूप से किया जा रहा है।

पेड़ पौधों के विकास में भारत ने अभी पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं की है। ऐसी आशा की जाती है कि अगले दशक के अंत तक भारत इस तकनीक को पूर्णतः विकसित कर लेगा। भारत में इस तकनीक से वन के विस्तार में सफलता तो मिलेगी ही, साथ में कृषि के क्षेत्र में भी आत्मनिर्भरता भी प्राप्त होगी। भारत में इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस में माइक्रोबायोलॉजी एवं सेल बायोलॉजी विभाग में इस पर गहन अनुसंधान जारी है। • • •

किसी भी चीज़ की 'तलाश' उस के प्राप्त करने की इच्छा के बिना नहीं हो सकती। इसी तरह किसी भी चीज़ को पा लेने का अहसास उसकी 'तलाश' के बिना नहीं हो सकता। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

— हर स्वरुप शर्मा

कवक विषालुताएं : अनंत खतरे

डा. रमेश सोमवंशी
भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान
मुक्तेश्वर- 263 138, नैनीताल (उ.प्र.)

हमारे भोजन में दिखायी न पड़ने वाले कवक-विष अनेक प्रकार के आन्तरिक रोग उत्पन्न कर सकते हैं, जिनका निदान बहुतबार समय रहते नहीं हो पाता है। इन रोगों के कारण जानने की सुविधाएं भी हमारे देश में कम ही हैं। प्रस्तुत लेख में इन विषों के सम्बन्ध में पढ़िए और जहाँ तक संभव हो, सावधान रहिए।

जीवित प्राणियों को आदिकाल से ही तरह-तरह के विष तथा विषाक्तताओं का सामना करना पड़ता रहा है। आज विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप, अनेकों रसायनिक, जीवाणु तथा पादपों द्वारा व्युत्पन्न विषों के सम्बंध में हमें पर्याप्त ज्ञान ही नहीं है, अपितु हम इनकी चिकित्सा व बचाव में भी सक्षम हैं। हाल के कुछ वर्षों की निरंतर खोजों द्वारा ज्ञात हुआ है कि कुछ विशेष परिस्थितियों में मनुष्य कुछ पालतू पशु व पक्षियों में कुछ विशेष प्रकार की विषाक्तताओं से जिन्हें "कवक - विषालुताएं" या "माइकोटॉक्सीकोसेस" के नाम से जाना जाता है, ग्रसित होते हैं। कवक विषों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि ये शरीर के विशिष्ट अंगों को प्रभावित करते हैं, जैसे कि एफला-विष से यकृत, आकरा विष तथा सिट्रीनिन से गुर्दे, अरगटामीन तथा जियरलिनान से गर्भाशय और ट्रीमरजेन से तंत्रिका-तंत्र प्रभावित होता है। नित नवीनतम कवक शोधों से विषालुताओं से उत्पन्न होने वाले अनेकों रोगों के संबंध में हमारा ज्ञान बढ़ा है, तथा अनेकों तथ्यों की विवेचना करने से ज्ञात हुआ है कि इनसे उत्पन्न होने वाले खतरे अनंत है। विभिन्न प्रकार की कवक विषालुताओं से मनुष्यों, पशुओं तथा पक्षियों में अधिक विष ग्रहण करने पर उत्परिवर्तन, ईस्ट्रोजैनिक कैंसर, चिरकारी रोग, जैसे चिरकारी यकृत शोथ, तथा कम मात्रा में विष लेने पर युवाओं की वृद्धि रुकने, विभिन्न रोगों के प्रति प्रतिरक्षा (इम्यूनिटी) की कमी तथा इनके अन्य रोगों के प्रति संवेदनशीलता भी बढ़ जाती है। एफला, आकरा विष, स्टेरीग-मैट सिस्टीन, ट्राइकोथीसीन्स और जियरालीनोन विकसित होते हुए भ्रूण को प्रभावित करते हैं, क्योंकि ये भ्रूण-विषाक्तता उत्पन्न करते हैं। कुछ कवक विषों का प्रयोग रसायनिक आयुधों के रूप में भी किया जाता है। अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में ही ये विष अत्यधिक घातक दुष्परिणाम उत्पन्न करते हैं। हाल ही में ईरान-ईराक युद्ध में रसायनिक आयुधों के रूप में एक कवक विष, टी-2 का उपयोग इसका अत्यन्त ताजा उदाहरण है।

विभिन्न प्रकार के कवक विष

सामान्यतः कवक विष कम अणुभार, प्रतिजनरहित, कवक चयापचयक होते हैं जो कि पशुओं एवं मनष्यों में विषालुताएं पैदा करते हैं। ये कवक विषाक्तताएं अंतर्ग्रहण, अभिश्वसन, या त्वचा के प्रत्यक्ष सम्पर्क द्वारा उत्पन्न होती हैं। उल्लेखनीय है कि अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में भी (जैसी कि एक भाग प्रति खरब) ये विष गंभीर स्वास्थ्य समस्याएं उत्पन्न करते हैं। ऐसी विषालुताओं का निदान कठिनाई से होता है। ये असंक्रामक होती हैं और जीवनाशक औषधियों से इन से उत्पन्न रोगों की चिकित्सा नहीं की जाती है। ये किन्हीं विशिष्ट मौसमों में अधिक होती हैं और मूंगफली, मक्का तथा अन्य अनाजों के ग्रहण करने से संबंधित होती हैं।

तालिका - 1 में विभिन्न कवक-विषों तथा इनकी मूलकारक फफूंदों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

कवक विष के स्रोत

लगभग एक सौ फफूंद प्रजातियां विषैले पदार्थ उत्पन्न करती पायी गयी हैं, जिनमें से तेरह पदार्थ पालतू पशुओं में कवक विषालुताएं उत्पन्न करते हैं। विषैली फफूंदें सर्वत्र पायी जाती हैं। ये फफूंदें खड़ी फसलों या भंडारित अनाजों में मिलती हैं। खेतों में खड़ी फसलें जब कीटों, खराब मौसमों या कटाई के समय यंत्रों द्वारा क्षतिग्रस्त हो जाती हैं, तब इन पर फफूंदों का आक्रमण और कवक-विष निर्माण होता है। फफूंद-विष समस्या बहुत हद तक अनाज और अन्य पशु-भोज्य, दोनों, विशेषकर मूंगफली, मक्का, जई, जौ, बिनौला तथा यदाकदा साइलेज के गलत भंडारण से उत्पन्न होती है। विषैली फफूंदों का अंकुरण, वृद्धि तथा विष-उत्पादन नमी, ताप, ऑक्सीजन इत्यादि के उपयुक्त होने पर होता है। विभिन्न फफूंदों के विष-उत्पादन की उपयुक्त अवस्था में बहुत अन्तर होता है, जैसे कि कुछ फफूंदें शून्य, कुछ मध्यम तथा अन्य 25 डिग्री से. तापमान पर विष उत्पन्न करती हैं। अतः, भिन्न-भिन्न जलवायु

वाले क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की कवक विषालुताएं उत्पन्न होती हैं। चूंकि हमारे पालतू पशु जैसे कि कुक्कुट, गाय, भैंसें तथा सुअर इन भँडारित दानों का सेवन करते हैं, इन में तरह-तरह के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

पशुओं के स्वास्थ्य पर कवक-विषों का प्रभाव

कवक-विषों के प्रति पशुओं की संवेदनशीलता आयु, पशु प्रजाति तथा विशिष्ट विषों के प्रकार पर निर्भर करती है। पशुओं पर कवक विषों के दुष्प्रभाव सामान्यतः तीन प्रकार के होते हैं :

1. **तीव्र प्राथमिक कवक विषालुताएं**

इस प्रकार की कवक विषालुताएं मध्यम से अधिक मात्रा में कवक विष ग्रहण करने से उत्पन्न होती हैं। इससे विशिष्ट, प्रत्यक्ष, तीव्र-प्रकोप उत्पन्न होते हैं। तीव्र रोग जैसे कि यकृत शोथ, रक्तस्राव, वृक्कशोथ, मुख तथा आंत्र की उपकला कोशिकाओं में गलन या मृत्यु हो जाती है। रोग के लक्षण विष के प्रकार, मात्रा, विशिष्ट अंगों में उत्पन्न क्षति पर निर्भर करते हैं।

2. **चिरकारी प्राथमिक कवक विषालुताएं**

इस प्रकार की कवक विषालुताएं मध्यम से कम मात्रा के कवक-विष ग्रहण करने से उत्पन्न होती हैं। कुछ रोगियों की वृद्धि व प्रजनन क्षमता में कमी होना पाया जाता है। चिरकारी प्राथमिक कवक विषालुताओं में तीव्र रूग्णता नहीं उत्पन्न होती है।

3. **द्वितीय प्रकार की कवक विषालुताएं**

इस प्रकार की अवस्थाएं अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में विशिष्ट कवक-विषों के ग्रहण करने से उत्पन्न होती हैं। इस से पशु संक्रामक रोगों के प्रति संवेदनशील, प्रतिरक्षा में गड़बड़ी तथा उनकी प्राकृतिक प्रतिरक्षा प्रक्रिया में कमी हो जाती है। रोगी पशुओं में कोशिका-माध्यमित प्रतिरक्षा में निश्चित कमी आती है।

एफलाविष

वर्ष 1960 में इंग्लैण्ड के व्यावसायिक केन्द्रों में टर्की, बत्तखों के चूजों व फीजेन्ट्स में **ऐस्पर्जिलस फ्लेवस** द्वारा दूषित मूंगफली की खली के प्रयोग के पश्चात् बहुत अधिक विषाक्तताएं हुईं, जिन्हें एफलाटाक्सीकोसिस के नाम से जाना गया। उपरोक्त फफूंद के अतिरिक्त, **ऐस्पर्जिलस पैरासिटीकस** भी एफलाविष उत्पन्न करता है। यह कवक-विष उपरोक्त फफूंदों द्वारा मक्का, ज्वार, बिनौला, मूंगफली इत्यादि अनाजों के दूषित होने पर उत्पन्न होता है। वर्तमान समय में कई प्रकार के एफलाविष ज्ञात हैं जो कि बी-1, बी-2, जी-1, जी-2, एम-1, बी-2ए व जी-2ए नाम से जाने जाते हैं। अन्य कवक-विषालुताओं की अपेक्षा एफला-विषाक्तता के विषय में कुछ अधिक ज्ञान उपलब्ध है। एफलाविष का महत्व इस बात से बहुत अधिक है कि यह अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में प्रयोगशालीय चूहों, फैरेट, बत्तखों, ट्राउट-मछली, कुत्तों, मुर्गियों, टर्की, गौ-पशुओं, शूकरों तथा मनुष्यों में यकृत कैन्सर उत्पन्न करता है। यह विष कोशाओं में प्रोटीन संश्लेषण तथा वसा के आवागमन में भी प्रतिरोध उत्पन्न करता है। एक भाग प्रति दसलाख मात्रा में विष शरीर-वृद्धि में रुकावट और यकृत में परिवर्तन उत्पन्न कर देता है। अधिकांश प्रभावित पशु कमजोर, सुस्त, खुरदरी त्वचा युक्त, अरक्तता ग्रस्त व चिरकारी यकृत शोथ से पीड़ित हो सकते हैं।

मनुष्यों में तीव्र एफला - विषाक्तता

दूषित भोज्य पदार्थों में एफलाविष की अत्यधिक मात्रा, जैसे कि 2-6 मिलीग्राम प्रति दिन एक माह तक ग्रहण करने पर मनुष्यों में तीव्र विषाक्तताएं उत्पन्न हो जाती हैं। यह विष विशेषकर यकृत और हृदय में विषाक्तता उत्पन्न करता है, यद्यपि इस तथ्य के कम प्रमाण हैं। गुजरात और राजस्थान के लगभग 150 गांवों में अत्यन्त कम वर्षा में उगायी गयी मक्का के उपयोग से सम्बंधित तीव्र विषाक्त यकृत शोथ का प्रकोप हुआ था। समस्त प्रकोप में अनुमानतः 1,000 लोग प्रभावित हुए और इस से लगभग 300 व्यक्तियों की मृत्यु हुई। ग्रामीणों ने ऐस्पर्जिलस फ्लेवस द्वारा दूषित दानों को खाया तथा अच्छे दानों को बाद में बीज के लिए बचाया था। विषाक्तता से नवजात शिशु व बच्चे ही नहीं, बल्कि वयस्क भी प्रभावित हुऐ थे। इस में रोगियों को हल्का ज्वर, पीलिया व जलोदर के लक्षण देखे गये, वमन तथा बढ़ा हुआ जिगर पाया गया। बचे हुए भोजन को खाने से कुत्तों में भी कुछ लक्षण देखे गये। इसी प्रकार, वर्ष 1982 में तीव्र यकृत शोध का प्रकोप अफ्रीकी देश, केन्या में उत्पन्न हुआ।

यकृत कैन्सर तथा अन्य रोग

एफलाविष को रे का संलक्षण, भारतीय बच्चों में चिरकारी यकृत शोथ तथा यकृत कैन्सर से संबंधित बताया गया है। मूंगफली के दूषित भोजन द्वारा चूहों में प्रयोगों द्वारा यकृत-कैन्सर पैदा किया गया है। यकृत-कैन्सर का उत्पन्न होना

एफलाविष की मात्रा पर निर्भर करता है। अनेकों वैज्ञानिकों का विचार है कि एफलाविष तथा यकृत-शोथ बी-विषाणु के संयुक्त प्रभाव द्वारा यकृत कैन्सर उत्पन्न होता है।

ट्राइकोथीसीन्स

दस में से केवल चार ट्राइकोथीसीन्स "भोजन दूषण" करती पायी गयी हैं। अनेकों फ्यूजेरियम प्रजातियां इसे उत्पन्न करती हैं। कुछ अन्य प्रकार की फफूंदें भी इस विष को पैदा करती हैं।

मनुष्यों में "एलीमेन्टरी टॉक्सिक एल्यूकिया" या ए.टी.ए. वर्ष 1931-1943 के बीच पहचानी गयी थी। इस रोग में मुंह, भोजन नली तथा उदर में गलन, श्वेत कोशिकाओं में अत्यधिक कमी तथा रोगियों में अत्यधिक मृत्युदर पायी गयी। फ्यूजेरियम पोये और फ0 स्पोरोट्राइक्वायड्स द्वारा दूषित अनाजों के अधिग्रहण से ये लक्षण उत्पन्न हुए। उन्नत कृषि विधियों के अपनाने से यह रोग अदृश्य हो गया।

ट्राइकोथीसीन्स को मनुष्यों मे रासायनिक चिकित्सा हेतु प्रयुक्त करने के लिए शोध की गयी है। एन्गयूडिन एक ऐसी ही औषध है।

आकराविष - ए

ये पैनेसिलियम और ऐस्पर्जिलस प्रजाति की अनेकों फफूंदों द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं। इन फफूंदों की विष उत्पादन क्षमता अत्यधिक है क्योंकि ये समस्त विश्व में पायी जाती हैं तथा कुछ पेनेसिलियम प्रजातियां 50^0 से. न्यूनतम ताप पर भी विष उत्पादन करती है। वर्ष 1928 में डेनमार्क के वैज्ञानिक लारसेन ने शूकरों में गुर्दों के रोगों का वर्णन किया जिसका प्रकोप गीले (वर्षा) मौसम में होता था। आकराविष - ए इसका कारण पाया गया। डेनमार्क में अब प्रभावित गुर्दों की नियमित जांच की जाती है तथा यदि 10 नैनोग्राम प्रति ग्राम आकराविष - ए मिलता है तो शूकर मांस उपयोग नहीं किया जाता है। बुल्गारिया, रोमानिया और यूगोस्लाविया में 3-8% मनुष्यों में "बाल्कन गुर्दों का रोग" का प्रकोप होता है। इस रोग में सूक्ष्म क्षतियां शूकरों जैसी होती हैं। अतः, वर्ष 1974 में इसको "आकराविष" द्वारा उत्पन्न होने का संदेह किया गया। यह रोग 30-50 वर्ष की ग्रामीण स्त्रियों में अधिक होता पाया गया है तथा धीरे-धीरे मृत्यु उत्पन्न करता है। अत्यधिक वर्षा से इसका प्रकोप बढ़ता है। मृत रोगी के गुर्दे छोटे हो जाते हैं। बुल्गारिया तथा सरबियन रोगग्रस्त क्षेत्रों में मूत्र संस्थान की 40% व्याधियों के साथ कैन्सर का आघटन भी पाया गया। प्रयोगों द्वारा चूहों में गुर्दों तथा यकृत के कैन्सर आकराविष-ए द्वारा उत्पन्न भी किये गये। हाल ही में भारत के कुछ पालतू पशुओं में भी इस रोग के आघटन के प्रतिवेदन प्रकाशित हुए हैं।

जियरालीनोन

यह एक फीनोलिक रीसोसाइक्लिक अम्ल लैक्टोन है जो कि फ्यूसेरियम ग्रैमीनियमरम, फ0 ट्राइसिन्कटम, फ0 ऑक्सीस्पोरम, फ0 स्पोटोट्राइक्वइड्स और फ0 मोनीत्तीफार्मी द्वारा उत्पन्न होता है। यह विष अमेरिका, फ्रांस, इंग्लैण्ड, फिनलैड तथा यूगोस्लाविया में मक्का, जौ तथा मिश्रित भोजन में पाया गया है। पिछले पचास वर्षों से शूकरों में फफूंद युक्त भोजन खाने से "इस्ट्रोजेनिक संलक्षणों" का वर्णन किया गया है। इस विषाक्तता में स्तन व योनिद्वार आकार में बढ़ जाते है और प्रजनन कार्यों पर प्रभाव पड़ता है। मनुष्यों में यह रोग नहीं ज्ञात है, यद्यपि अफ्रीका में लम्बे समय तक प्रयुक्त बीयर तथा खट्टी लपसी में बहुत अधिक मात्रा में जियरालीनोन पायी गयी। वैज्ञानिकों का विचार है कि इसका लम्बे समय तक प्रयोग हानिकारक हो सकता है।

अरगट

क्लेवीसेप्स परप्यूरिया फफूंद की कुछ घासों व अनाज पर संक्रमण द्वारा "स्केलरोटिया" (सघन हाइफी संरचना) उत्पन्न होती है। अरगट एल्कलायड्स लाइसर्जिक अम्ल (अरगेटोमीन), आइसो लाइसर्जिक अम्ल (अरगो क्रिस्टाइन या डाइमिथाइल अल्गोलाइन, अरगोक्लेवाइन) व्युत्पन्न हैं। हाल ही में इथियोपिया में दो वर्षों के सूखे के पश्चात इस विषाक्तता का प्रकोप हुआ। जौ क्लेवीसेप्स परप्यूरिया द्वारा दूषित थे। लगभग 93 व्यक्तियों को गैंग्रीनस अरगटिसन हुआ तथा 47 लोगों की मृत्यु हुई। पुरुष अधिक रोग ग्रस्त हुए जिनकी आयु 5-34 वर्ष के मध्य थी। रोग के लक्षणों में दुर्बलता, जलन, वमन, दस्त इत्यादि प्रमुख थे। अनेकों रोगियों में सूखी गैंग्रीन, कमजोर या गायब नाड़ी, पैरों के खराब होने के लक्षण देखे गये। माताओं में दूध की कमी से नवजात बच्चों की मृत्यु हुई। राजस्थान में 78 लोगों को पूर्व वमनावस्था, वमन, लम्बी सुस्ती के संलक्षण क्लेवीसेप्स परप्यूरिया द्वारा दूषित बाजरा के अधिग्रहण से उत्पन्न हुए। दूषित अनाज को जानवरों को खिलाने पर वे भी प्रभावित हुए।

कवक विषाक्तताओं से बचाव

पशुओं तथा मुर्गियों के भण्डारित भोजन में कवक-विषों का निर्माण रोकना ही इन में कवक-विषालुताओं से बचाव का मुख्य उद्देश्य होता है। इसके लिए, अनाज में 13-15% नमी को कम करने के लिए अनाज को तेजी से शुष्कीकृत किया जाता है। अधिक नमी वाली मक्का को प्रोपिआनिक अम्ल जैसे भोजन परिरक्षकों से उपचारित किया जाता है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि ऐसे परिरक्षकों द्वारा मक्का आदि को उपचारित करने से पूर्व उनमें बने कवक विष की मात्रा को कम नहीं कर सकते हैं।

भोजन पकाने की प्रक्रिया से एफलाविष की मात्रा को कम किया जा सकता है। मूंगफली को भूनने, छोटे, बेरंगे दानों को अलग करने से भी एफलाविष के स्तर को कम कर सकते हैं। क्षारीय प्रतिक्रियाओं द्वारा मक्का में एफलाविष की मात्रा घटायी जा सकती है। इसके लिए अमोनिया गैस से उपचारित करके मक्का व बिनौला को प्रभावकारी ढंग से एफलाविष विहीन किया जा सकता है। अमेरिका के "भोजन तथा भेषज प्रशासन" के नियम के अनुसार भोजन में 20 तथा दूध में 0.5 भाग प्रति खरब तक एफलाविष का उपयोग सुरक्षित है तथा इससे मानव स्वास्थ्य पर कोई खतरा नहीं होता है।

आकरा, टी-2 विष, पैटुलिन, ग्राइसोफुलविन, जियरालीनोन इत्यादि पशुओं में कैन्सरजनक है, परन्तु मनुष्यों में इस से कैन्सर होने के कम प्रमाण हैं। ग्राइसोफुलविन का फफूंद प्रतिरोधी की तरह उपयोग किया जाता है।

विकासशील देशों में फफूंद नाशक उपचारों, परीक्षणों, भोजन वितरण की सुविधाओं के अभाव तथा खराब भण्डारों के कारण भविष्य में भी तीव्र कवक विषाक्तताओं के प्रकोप हो सकते हैं। परन्तु, इन की दीर्घ कालिक हानियों के मूल्यांकन के लिए आंकड़े कम ही उपलब्ध हैं! विकसित देश आयातित भोजनों में कवक-विषों की मात्रा की जांच करते हैं ताकि खतरनाक पदार्थों के दुष्प्रभावों को न्यूनतम किया जा सके। यह सत्य है कि नियंत्रण उपायों को अपनाने के बावजूद, भोज्य पदार्थ, यदा-कदा, भोजनों के देर में पाये जाने वाले कवक-विषों से दूषित होते रहेंगे। पशु चिकित्सा तथा अन्य संबंधित व्यवसायों को इन व्युत्पन्न समस्याओं को पहिचानने, नियंत्रण व उपचार के लिए तैयार रहना होगा।

तालिका - 1

कवक विष	कारक फफूंद	भोज्य स्रोत
एफला विष बी-1	ऐस्पर्जिलस फ्लेवस ऐस्पर्जिलस पैरासिटीकस	मक्का, कपास, मूंगफली तथा अनाज
सीट्रीनिन	पैनीसीलियम सिट्रीनम पैनीसीलियम विरीडिकेटम ऐस्पर्जिलस प्रजाति	गेहूं, जौ तथा जई
अरगट	क्लेविसस परक्यूरा	राई, जौ, जई, गेहूं तथा घास
आक्राविष - ए	ए. आक्रेशियस पैनीसीलियम विरीडिकेटम	मक्का, जौ, जई तथा गेहूँ
ट्राइकोथीसीन्स	फ्यूजेरियम प्रजाति	मक्का, अनाज
जियरलिनॉन	फ्यूजेरियम प्रजाति	मक्का

● ● ●

संगीत : एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण

सुधांशु पंत
20/6ए, जवाहरलाल नेहरू मार्ग
इलाहाबाद - 211002

संगीत पाँच ललित कलाओं में से एक है। साधारणतः, लोग इसे मात्र मनोरंजन का साधन समझते हैं। परन्तु यह सत्य है कि संगीत के जन्म एवं क्रमिक विकास के पीछे अनेक वैज्ञानिक सिद्धान्त रहे हैं। संगीत का आधार गणित, भौतिकशास्त्र, मनोविज्ञान आदि विषयों में है। प्रयोगात्मक स्तर पर संगीत कम्प्यूटर विज्ञान एवं आयुर्विज्ञान जैसे आधुनिक विषयों से भी सम्बन्धित है। प्रस्तुत लेख में संगीत का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण किया गया है।

आदिकाल से संगीत मानव जीवन, संस्कृति एवं सभ्यता का अभिन्न अंग रहा है। विभिन्न लोगों ने संगीत को अपने-अपने अर्थों में अपनाया है। किसी के लिए संगीत एक व्यवसाय है, तो किसी और के लिए मनोरंजन एवं आत्म-तुष्टि का साधन। बहुत कम लोगों को यह भान है कि संगीत की उत्पत्ति एवं विकास के पीछे अनेक वैज्ञानिक सिद्धान्तों का हाथ है। यह सिद्धान्त गणित एवं भौतिकी से लेकर मनोविज्ञान जैसे विषय तक फैले हुए हैं। हम यहाँ संगीत एवं उसके मूल सिद्धान्तों का वैज्ञानिक विश्लेषण करेंगे।

भारतीय शास्त्रों के अनुसार - "गीत, वाद्यं, नृत्य च, त्रयं संगीतमुच्यते", अर्थात् गायन, वादन एवं नृत्य के समन्वय को संगीत कहते हैं। पाश्चात्य मत में नृत्य को संगीत से अलग रखा गया है। आखिर संगीत का उद्भव कैसे हुआ ? इस सम्बन्ध में अनेक मत हैं। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रॉयड के अनुसार, जिस प्रकार एक नवजात शिशु रोकर अपने आगमन की सूचना देता है, उसी प्रकार संगीत भी स्वतः उत्पन्न हुआ था। फ्रॉयड तो शिशु के प्रथम क्रन्दन को संगीत का ही एक प्रकार मानते हैं। एक अन्य मत के अनुसार चीन देश में एक ऐसा पक्षी था जिसकी चोंच में छेद था। इसके अनुसार, वायु के इस छेद से प्रवाहित होने पर विभिन्न स्वरों की उत्पत्ति होती थी। स्वरों की आवृत्ति वायु के वेग पर निर्भर करती थी। ऐसे अनेक मत हैं जो वैज्ञानिक एवं तर्कपूर्ण होने के कारण असंदिग्ध हैं।

संगीत के उद्भव का जो भी कारण रहा हो, उसका मूल "ध्वनि" में निहित है। भौतिक शास्त्र के अनुसार ध्वनि एक प्रकार की ऊर्जा है जो द्रव्यात्मक माध्यम में संचरित होकर श्रवण-संवेदन उत्पन्न करती है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कम्पन संगीत का प्रमुख तत्व है। जब हम घन्टी पर घन से आघात करते हैं, तो वह आंदोलित होकर वायु में अनुदैर्ध्य कम्पन पैदा करती है। इससे निकटस्थ वायु में कम्पन संचरित होते हैं। अन्ततः यह कम्पन हमारे कर्णपटल तक पहुंचते हैं एवं हम संवेदन के कारण ध्वनि को सुन पाते हैं।

ध्वनि के तीन मुख्य लक्षण होते हैं : तीव्रता, तारत्व एवं सांगीतिक स्वरूप। ध्वनि की तीव्रता सम्बद्ध ऊर्जा का माप होती है। तीव्रता से ही संबंधित है प्रबलता। ध्वनि की प्रबलता एवं उसकी तीव्रता के दशमलव आधारी लघुगणक के मध्य अनुलोमानुपाती सम्बन्ध होता है। ध्वनि की तीव्रता (एवं प्रबलता) को अनेक कारक प्रभावित करते हैं। इनमें कम्पन का आयाम, स्रोत - प्रेक्षक दूरी, ध्वनिकारी वस्तु का क्षेत्रफल, माध्यम घनत्व, वायु - गति आदि प्रमुख हैं। तीव्रता एवं प्रबलता का भौतिक माप क्रमशः "डेसिबल" तथा "फोन" में होता है। आवृत्ति अथवा आन्दोलन संख्या ध्वनि के तारत्व का निर्धारण करती है। जितनी अधिक आवृत्ति होगी उतनी ही ध्वनि तीक्ष्ण होगी। आवृत्ति का भौतिक माप "हर्ट्ज" में होता है तथा श्रव्यता का परास 20 हर्ट्ज से 20 किलो हर्ट्ज तक है। ध्वनि का तीसरा लक्षण है सांगीतिक स्वरूप। इसके कारण हम भिन्न प्रकृति की ध्वनियों में भेद करने में समर्थ हो पाते हैं। मूलस्वर के साथ उत्पन्न होने वाले अधिस्वरों के कारण ऐसा संभव हो पाता है। इन अधिस्वरों की संख्या ध्वनि की प्रकृति पर निर्भर करती है।

संगीत में स्वरों के कुलक तथा निश्चित स्वर - ग्रामों का विशेष महत्व है। इन स्वरों तथा स्वर-ग्रामों की स्थापना भी वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर की गयी है। भारतीय संगीत शास्त्रों के अनुसार एक समान आवृत्ति वाली सांगीतिक ध्वनि को "नाद" कहते हैं। नाद असंख्य हो सकते हैं। मनुष्य 22

नादों को सरलता से पहचान सकने में सक्षम है। यह 22 नाद श्रुति कहलाते हैं। यदि इन 22 श्रुतियों को समान दूरी पर इस प्रकार स्थापित किया जाय कि 23वीं श्रुति की आवृत्ति पहली श्रुति की आवृत्ति की दोगुनी हो, तो ऐसे श्रुतिसमूह को हम "सप्तक" कहते हैं। 23वीं श्रुति से अगला सप्तक आरम्भ होता है। एक "गुरू-स्वरक" 4 श्रुतियों के, "अर्धस्वरक" 3 श्रुतियों के, तथा "लघुस्वरक" दो श्रुतियों के बराबर होते हैं। निश्चित अन्तराल पर स्थापित सात मुख्य श्रुतियां "मूल स्वर" कहलाती हैं। संगीत की भाषा में इन स्वरों को षड्ज (स), ऋषभ (रे), गांधार (ग), मध्यम (म), पंचम (प), धैवत (ध), एवं निषाद (नि) कहते हैं। यह सात स्वर "प्रकृत स्वर" कहलाते हैं। षड्ज एवं पंचम को छोड़कर अन्य सभी मूल स्वरों के "विकृत" प्रकार भी हैं। विकृत स्वर की आवृत्ति यदि मूल स्वर की आवृत्ति से अधिक किन्तु अगले मूल स्वर से कम होती है तो वह "तीव्र विकृत" कहलाता है। ऐसा मध्यम के साथ होता है। यदि विकृत स्वर की आवृत्ति मूल स्वर की आवृत्ति से कम, किन्तु पिछले मूल स्वर से अधिक होती है तो वह "कोमल विकृत" कहलाता है। ऐसा ऋषभ, गांधार, धैवत तथा निषाद के साथ होता है। विकृत स्वरों की आवृत्ति का निर्धारण भी वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर किया गया है। किसी भी स्वर के दो निकटस्थ सप्तकों में आवृत्ति का अनुपात 1:2 होता है।

दो निकटस्थ स्वरों के बीच की दूरी को "स्वरांतराल" कहते हैं। दूरी का माप आवृत्तियों के ऐसे अनुपात से किया जाता है जिसमें भाज्य, भाजक से अधिक होता है। यहां गणित के सूक्ष्म सिद्धान्तों की जानकारी आवश्यक हो जाती है। एक समांतरालीय विकृत ग्राम में सप्तक को 12 समान अन्तरालों में विभाजित किया जाता है। दो निकटस्थ स्वरों के बीच का गुणात्मक स्वरांतराल दो के बारहवें मूल (लगभग 1.0595) के बराबर होता है। अतः, 9/8, 10/9 तथा 16/15 के अन्तराल क्रमशः गुरू स्वरक, लघुस्वरक तथा अर्धस्वरक के बराबर हो जाते हैं। योगात्मक स्वरांतराल में प्रत्येक अर्धस्वरक को 100 उप-अन्तरालों में विभाजित करते हैं जो "सेंट" कहलाते हैं। अतः, एक सेंट सप्तक का 1200 वां भाग होता है। अनुपात से सेंट में परिवर्तन लघुगणक सारणी की सहायता से किया जाता है। गणना द्वारा यह मालूम पड़ता है कि गुरूस्वरक, लघुस्वरक तथा अर्धस्वरक क्रमशः 204, 182 तथा 112 सेंट के बराबर होते हैं। योगात्मक स्वरांतराल के प्रयोग से कठिन गुणा-भाग का स्थान सरल योग-ऋण ले लेते हैं। समांतरालीय विकृत ग्राम का प्रमुख दोष भारतीय संगीत के श्रुति-सिद्धान्त को स्पष्ट न कर पाना है।

वाद्य-यन्त्रों की बनावट एवं निर्माण का भौतिक शास्त्र के नियमों एवं सिद्धान्तों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन सिद्धान्तों के आधार पर ही हम विभिन्न वाद्यों में स्वरों की उत्पत्ति की प्रक्रिया को समझ पाये हैं। इन वाद्यों के चार वर्ग माने गये हैं :

1. तत् वाद्य, जिनमें स्वरोत्पत्ति तारों के कम्पन से होती है, जैसे सितार, सरोद, आदि।
2. सुषिर वाद्य, जिनमें स्वरोत्पत्ति वायु के प्रवाह से होती है, जैसे बांसुरी, शहनाई आदि।
3. घन वाद्य, जिनमें स्वरोत्पत्ति लकड़ी अथवा धातु के आघात से होती है, जैसे जलतरंग, पियानो आदि।
4. अवनद्ध वाद्य, जिनमें स्वरोत्पत्ति चमड़े पर आघात से होती है, जैसे तबला, मृदंग आदि।

वैज्ञानिक दृष्टि से प्रथम दो प्रकार, अर्थात तत् एवं सुषिर अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इन पर हम विस्तार से विचार करेंगे।

तत् वाद्यों में स्वरोत्पत्ति का आधार खिंचा हुआ तार होता है। भौतिक शास्त्र में खिंचे हुए तार के कम्पन के सम्बन्ध में चार नियम हैं। पहला, तार के कम्पन की मूल आवृत्ति तथा उसकी प्रभावी लम्बाई के बीच प्रतिलोमानुपाती सम्बन्ध होता है। तार की प्रभावी लम्बाई जितनी कम होगी, स्वर की आवृत्ति उतनी अधिक होगी। दूसरा, मूल आवृत्ति तथा तार के तनाव के वर्गमूल के बीच अनुलोमानुपाती सम्बन्ध होता है। यदि आवृत्ति को दोगुना करना है तो तार के तनाव को चौगुना करना होगा। तीसरा, मूल आवृत्ति तथा रेखीय घनत्व के वर्गमूल के बीच प्रतिलोमानुपाती सम्बन्ध होता है। यदि दोगुने व्यास के तार का प्रयोग किया जाय, तो मूल आवृत्ति आधी हो जायेगी। इन सभी नियमों को प्रायोगिक स्तर पर सुरमापी की सहायता से सिद्ध किया गया है।

तत् वाद्यों की एक विशेषता यह भी है कि तार मूल कम्पन के अतिरिक्त निस्पंद खण्डों में भी आंदोलित होता है। यह निस्पंद खण्ड कम्पन हरात्मक श्रेणी 1/क, क = 1,2,3 . . . के अनुसार होता है। यदि मूल आवृत्ति ल है, तो मूल स्वर के

अतिरिक्त 2 ल,3 ल ... आदि आवृत्तियों के स्वर भी उत्पन्न होंगे। मूल स्वर की तुलना में यह अतिरिक्त स्वर अत्यन्त क्षीण होते हैं तथा मूल स्वर के संवर्धन में सहायक होते हैं। इन सहायक स्वरों की उत्पत्ति के लिए अनुनादी तारों का प्रयोग किया जाता है। इससे स्वर के माधुर्य में वृद्धि हो जाती है।

सुषिर वाद्यों में स्वरोत्पत्ति वायु स्तम्भ के कम्पन के कारण होती है। एक ओर से वायु प्रवेश करती है तथा दूसरी तरफ से बाहर निकलती है। यंत्र पर बने छिद्रों को खोलने एवं बंद करने से वायु स्तम्भ की प्रभावी लम्बाई में परिवर्तन किया जाता है। मूल आवृत्ति तथा ध्वनि गति के बीच अनुलोमानुपाती एवं मूल आवृत्ति तथा वायु स्तम्भ की प्रभावी लम्बाई के बीच प्रतिलोमानुपाती सम्बन्ध होता है।

तत् एवं शुषिर, दोनों ही प्रकार के वाद्य तापमान के प्रति संवेदनशील होते हैं। तापमान बढ़ने पर तार की लम्बाई विस्तार के कारण बढ़ जाती है। अतः, निमयानुसार मूल आवृत्ति पहले की अपेक्षा कम हो जाती है। परन्तु तापमान बढ़ने पर वायु में ध्वनि की गति 0.610 मी/से. के अनुसार बढ़ती है। अतः, नियमानुसार मूल आवृत्ति पहले की अपेक्षा अधिक हो जाती है। उदाहरण के लिए, यदि सितार एवं बांसुरी को शीत ऋतु में समान आवृत्ति पर मिलाया जाए तो अगली ग्रीष्म ऋतु में उनके मध्य स्वरैक्य नहीं पाया जाएगा। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि तापमान बढ़ने से सितार के स्वर की मूल आवृत्ति पहले की अपेक्षा कम तथा बांसुरी के स्वर की मूल आवृत्ति अधिक हो जाएगी।

वर्तमान युग में संगीत मनोरंजन का साधन होने के अतिरिक्त अनेक वैज्ञानिक विशिष्टताओं से युक्त है। आयुर्वैज्ञानिक संगीत को शारीरिक एवं मानसिक थकान दूर करने का सर्वोत्तम साधन मानते हैं। आज के कम्प्यूटर युग में संगीत का संश्लेषण तथा विश्लेषण कम्प्यूटर की सहायता से किया जा रहा है। बम्बई स्थित "नेशनल सेन्टर फार परफॉरमिंग आर्ट्स" ने इस दिशा में आशातीत सफलता प्राप्त की है। फ्रांसीसी वैज्ञानिक ,बेल ने ऐसे कम्प्यूटर यन्त्रों का आविष्कार किया है जो भारतीय रागों का विश्लेषण तथा अवनद्ध वाद्यों के बोलों का संश्लेषण करने में समर्थ हैं। कम्प्यूटर की सहायता से अनेक श्रेष्ठ संगीत पदों की रचना की गयी है। अन्त में, यद्यपि संगीत अत्यन्त गूढ़ वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है, तथापि इसके रस-ग्रहण के लिए एक वैज्ञानिक से अधिक एक अच्छे श्रोता की आवश्यकता होती है। संगीत विज्ञान एवं कला के संयोग का श्रेष्ठतम उदाहरण है। • • •

लेखकों से निवेदन

* "वैज्ञानिक" हेतु लेख भेजते समय कृपया निम्न बातें ध्यान में रखे :
* लेख का विषय नया हो जो पाठकों में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा बढ़ाए,
* लेख मौलिक और पठनीय हो, भाषा सरल और बोधगम्य,
* कृपया अनुवादित लेख न भेजें,
* लेख टंकित किया हुआ अथवा स्पष्ट हस्तलिपि में दोनों ओर पर्याप्त हाशिए छोड़ कर काग़ज के एक ओर ही लिखें,
* विषय वस्तु समझाने के लिए यदि चित्र आवश्यक हों तो उन्हें सफेद काग़ज पर काली रोशनाई से खींच कर लेख के अन्त में संलग्न कर दें, पाण्डुलिपि में मूलपाठ के साथ उसी पृष्ठ पर चित्र न बनाएं,
* अस्वीकृत रचनाएं डाक-टिकट लगा लिफाफा संलग्न होने पर ही वापस की जाएंगी।

— संपादक

खाद्य पदार्थों में मिलावट

डा. डी. डी. ओझा
ब्रह्मपुरी, हजारी चबूतरा
जोधपुर - 342 001.

सभी प्रकार की खाने की वस्तुओं में मिलावट इतनी अधिक बढ़ गयी है कि समाज ने इस अभिशाप को स्वीकार कर लिया है। अब कोई मिलावट की शिकायत नहीं करता है। मिलावट करने वाले सस्ती चीजों की खोज में रहते हैं, तो वैज्ञानिक उनकी पहचान करने में। खाने की कुछ वस्तुओं में मिलावट की पहचान प्रस्तुत है।

प्रत्येक जीवधारी को अपना जीवन पूरा करने तथा निरोग रहने के लिए शुद्ध भोजन, शुद्ध हवा तथा पानी की आवश्यकता होती है। आज हम हर क्षेत्र में उन्नति की ओर अग्रसर हो रहे हैं तथा काफी सफलताएं भी प्राप्त कर रहे हैं, मगर चिन्ता इस बात की हो रही है कि हमें खाद्य वस्तुएं शुद्ध मात्रा में प्राप्त नहीं हो रही हैं जिसके कारण आज देश का औसतन हर व्यक्ति किसी-न-किसी बीमारी से पीड़ित है। इसका एक प्रमुख कारण खाद्य पदार्थों में मिलावट भी है। आजकल धनलोलुप व्यापारी खाद्य पदार्थों में ऐसी अशुद्ध, सस्ती तथा अनावश्यक वस्तएं मिला देते हैं जो देखने में शुद्ध वस्तु के सदृश्य होती हैं। आमतौर से मिलावटी पदार्थ के एक-दो गुण असली पदार्थ के गुणों से मेल खाते हैं। इससे खाद्य-पदार्थों में मिलावट का पता आसानी से नहीं चल पाता है। साधारण गृहणियों के लिए तो मिलावट पहिचानना अत्यन्त कठिन होता है।

खाद्य व्यवसायियों की यह मनोवृति संसार के लगभग सभी देशों में पायी जाती है, किन्तु अशिक्षित, निर्धन और अल्प विकसित देशों में यह अधिक देखने में आती है। दूध, घी, तेल, अन्न, आटा, मसाले, चाय, काफी, शर्बत आदि महंगे तथा देहसंरक्षी पदार्थों में अधिकतर मिलावट की जाती है। इससे इनकी उपयोगिता कम हो जाती है। इन मिलावटी पदार्थों के सेवन से हमारे शरीर में कई प्रकार के रोग हो जाते हैं। इसलिए इस मनोवृत्ति पर रोक लगाना बहुत जरूरी है। भारत सरकार ने इस कार्य को रोकने हेतु कई सख्त कदम उठाये हैं जिसके कारण इस ज्वलन्त समस्या पर काबू पाया जा रहा है। अतः, आम आदमी को इस बात का ज्ञान होना जरूरी है कि हमारे खाद्य पदार्थों में किन-किन पदार्थों की मिलावट होती है। वैज्ञानिकों ने कुछ सरल विधियाँ भी परीक्षण हेतु खोज निकाली हैं, जिनकी मदद से घर में ही बिना किसी विशेष उपकरण के खाद्य पदार्थों में मिलावट पहचानी जा सकती है। कुछ व्यवसायी मिलावट किये बिना भी शुद्ध खाद्य पदार्थ को विकृत अथवा उसका पौष्टिक तत्व निकाल कर बेचते हैं, जैसे दूध से मक्खन निकाल कर उसे शुद्ध दूध के रूप में बेचना, अथवा एक बार प्रयुक्त चाय की पत्तियों को सुखाकर पुनः बेचना भी एक तरह से अपद्रव्यीकरण ही है। खाद्य पदार्थ के अपद्रव्यीकरण से स्वास्थ्य की हानि को रोकने के लिए वर्ष 1954 में हमारे देश में "खाद्य अपद्रव्यीकरण निवारक अधिनियम" लागू किया गया तथा 1955 में इसके अन्तर्गत आवश्यक नियम बनाकर जारी किये गये।

कानूनन निम्नलिखित दशाओं में खाद्य अपद्रव्यीकृत माना जाता है।

(i) पदार्थ का स्वाभाविक गुण, सारतत्व या श्रेष्ठता स्तर भिन्न होने से ग्राहक को हानि पहुंचती हो,

(ii) वह पदार्थ जिसमें घटिया वस्तु मिला दी गयी हो, अथवा उसका पौष्टिक तत्व निकाल दिया गया हो,

(iii) वह पदार्थ जो दूषित या हानिकारक हो, जिसमें गंदा, सड़ा, विघटित या रोगयुक्त प्राणीद्रव्य या वानस्पतिक वस्तु मिला दी गयी हो, तथा जिसमें कीड़े पड़ गये हों तथा मनुष्य के खाने योग्य नहीं हो,

(iv) वह पदार्थ जो किसी रोगी पशु से प्राप्त किया गया हो, अथवा जिस पात्र में डाला गया हो, वह दूषित हो,

(v) वह पदार्थ जिसमें अस्वीकृत रंजक द्रव्य मिला हो अथवा स्वीकृत रंजक द्रव्य निश्चित सीमा से अधिक मिला हो।

(vi) वह पदार्थ जिसकी श्रेष्ठता अथवा शुद्धता निर्धारित मानक से कम हो।

अधिनियम द्वारा उक्त अपद्रव्यीकरण के अलावा, भोजन की शुद्धता और स्वच्छता, भोजन के पात्रों, पाकशाला और भंडार की स्वच्छता तथा परिशोधन, तथा खाद्य पदार्थों की मक्खी, धूल, मलिनता आदि से भी रक्षा आवश्यक बतायी गयी है। संक्रामक, सांसर्गिक अथवा घृणित रोग से ग्रस्त मनुष्य खाद्य पदार्थ न तो बना सकता है, न बेच सकता है। जंग लगे पात्र, सीसा मिश्रित एल्यूमीनीयम पात्र, बिना कलई के ताम्बे अथवा पीतल के पात्र तथा जर्जरित एनामेल वाले तामचीनी के पात्रों का प्रयोग वर्जित है।

कुछ खाद्य पदार्थों की शुद्धता के मानक इस प्रकार हैं :

खाद्यान्न : खाद्यान्न में धूल, कंकड़, तृणभूसा आदि के अतिरिक्त, अन्य सस्ते अन्न मिलावट के रूप में प्रायः नित्य ही देखने में आते हैं। जौ, ज्वार, मक्का, चना, मटर तथा अन्य निम्न श्रेणी के अन्नों के दाने, कुछ तो खेत में या कृषक के भंडार में अनायास मिल जाते ही हैं, परन्तु मिलावटी व्यापारी इन्हें जानबूझ कर मिलाते हैं। इस प्रकार की मिलावट रोकने के लिए मानक निर्धारित हैं। साधारणतः अन्न में धूल, कंकड़ तथा तृण आदि 4%, बाहरी अन्न के दाने 10% (चावल में केवल 3%), टूटे दाने 10%, फफूंदीयुक्त दाने 1.5% तथा कीटयुक्त दाने 6% से अधिक नहीं होने चाहिए। सब मिलाकर अच्छे दाने 80% से कम नहीं होने चाहिए। जल की मात्रा गेहूँ में 12% तथा अन्य में 15% से अधिक किसी भी ऋतु में नहीं होनी चाहिए। खाद्यान्न में की गयी मिलावट का पता ग्राहक को सहज ही चल जाता है। गेहूँ में ग्ल्यूटिन नामक चिपचिपा प्रोटीन होता है जो अन्य अन्नों में नहीं होता है। यदि आटे में गेहूँ के अतिरिक्त किसी अन्य सस्ते अन्न की मिलावट है तो ग्ल्यूटिन का अनुपात कम हो जाता है। प्रायः, 8% से कम ग्लयूटिन वाला आटा अपमिश्रित समझा जाता है। अन्नों में स्टार्च के कणों की आकृति सूक्ष्मदर्शी यंत्र द्वारा देखने से मिलावटी अन्न का पता चल सकता है।

दूध-दही : स्वस्थ गाय, भैस, बकरी व भेड़ के दूध को नवदुग्ध (फेनुस, कोलोस्ट्रम) से रहित होना चाहिए। दूध में जल मिलाने से उसका विशिष्ट गुरूत्व बढ़ जाता है, मक्खन या क्रीम निकाल लेने से भी यह बढ़ जाता है। विभिन्न पशुओं से प्राप्त दूध के सारभूत पोषक द्रव्यों की मात्रा एक-सी नहीं होती है। इस कारण, उनके दूध की शुद्धता के मानक भी भिन्न-भिन्न हैं। गाय के दूध में दुग्धवसा की मात्रा उड़ीसा में 3%, पंजाब में 4% और अन्य प्रदेशों में 3.5% से कम नहीं होनी चाहिए और वसातिरिक्त ठोस द्रव्यों की अधिकतम सीमा 8.5% होनी चाहिए। भैंस के दुग्ध में दुग्धवसा की मात्रा दिल्ली, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, आसाम व बम्बई में 6% तथा शेष प्रदेशों में 5% है और वसातिरिक्त ठोस द्रव्य की अधिकतम सीमा 9% है।

दही में भी दुग्धेतर कोई बाहरी पदार्थ नहीं होना चाहिए। इसका मानक दूध के समान ही है।

जल मिलाकर दूध बेचना वर्जित है। अधिक उबालने से दूध में बहुत भौतिक और रासायनिक परिवर्तन हो जाते हैं। उसका खाद्यमान भी कम हो जाता है। इससे लैक्टोज शर्करा तथा कैरोमेल में परिणत हो जाता है, जिससे उसके स्वाद एवं रंग में अन्तर आ जाता है। दूध में अनेक प्रकार के कीटाणु पाये जाते हैं, जिनमें कुछ भयंकर रोगकारक भी होते हैं।

मक्खन तथा घी : मक्खन या घी केवल गाय या भैंस के दूध से ही प्राप्त पदार्थ है। दुग्धेतर कोई पदार्थ मक्खन या घी में नहीं होना चाहिए। मक्खन में कम से कम 80% दुग्धवसा होना आवश्यक है और जल की मात्रा 16% से अधिक नहीं होनी चाहिए। घी में जल की मात्रा 0.5% से अधिक नहीं होनी चाहिए।

खोआ : इसमें कोई दुग्धेतर पदार्थ नहीं होना चाहिए और दुग्धवसा की मात्रा 20% से कम नहीं रहनी चाहिए।

मार्गरीन : यह पदार्थ भी घी या मक्खन से मिलता जुलता है जिसमें 10% से अधिक दुग्धवसा नहीं होती। इसमें वानस्पतिक वसा 80% से कम और जल की मात्रा 16% से अधिक नहीं होनी चाहिए। इसमें 5% तिल का तेल मिलाना अनिवार्य है।

वातित या फेनिल पेय (एअरेटेड वाटर) : अशुद्ध जल अथवा अशुद्ध बर्फ के योग से बना पेय शुद्ध नहीं माना जाता है। शर्करा, साइट्रिक अम्ल तथा स्वीकृत रंजक का निश्चित मात्रा में प्रयोग वैध है। टार्टरिक अम्ल, फास्फोरिक अम्ल तथा खनिज अम्लों का प्रयोग और सीसा आदि विषैली धातुओं के लवणों का मिश्रण निषिद्ध है। हमारे देश से मसालों का निर्यात बहुत होता है। इस कारण, मसालों की शुद्धता के मानक स्थिर कर

सारणी - 1

मिलावट पहचानने की सरल विधियाँ

क्र. सं.	खाद्य पदार्थ	मिलावट	परीक्षण विधि
1.	दूध	पानी	दूध की एक बून्द चिकनी आड़ी सतह पर डालें। यदि वह धीरे-से आगे बढ़ती हुई अपने पीछे एक सफेद लकीर बनाए या खड़ी रहे तो शुद्ध दूध होता है। मिलावटी दूध की बून्द कोई निशान छोड़े बिना बह जायेगी।
		स्टार्च	थोड़े से दूध में टिन्चर आयोडीन की दो बूंद मिलाइए। यदि दूध नीला हो जाए, तो दूध में स्टार्च मिला हुआ है।
2.	घी या मक्खन	वनस्पति घी	परख नली में एक चम्मच पिघला हुआ घी या मक्खन, एक चम्मच नमक का सान्द्र अम्ल और एक चुटकी चीनी मिलाएं तथा इसे पांच मिनट तक रखें। नली की तली में किरमिची रंग दिखायी देना, वनस्पति घी की मिलावट को बताता है।
3.	खोया	स्टार्च	खोड़े से खोये में टिन्चर आयोडीन मिलाने से यदि खोया नीला हो जाय, तो उसमें स्टार्च मिला हुआ है।
4.	खाने का तेल	आरजीमोन तेल (सत्यानाशी)	थोड़े से तेल में शोरे का सान्द्र अम्ल मिलाकर सावधानी से हिलाएं। यदि अम्ल की सतह हल्की लाल हो जाय तो मिलावट अवश्य है।
		अरण्डी का तेल	परख नली में पैट्रोलियम ईथर डालकर उसमें तेल को धो दीजिए। फिर उसे नमक मिली बर्फ में ठंडा करें। यदि मैलापन ऊपर आ जाय तो उसमें अरण्डी के तेल की मिलावट है।
5.	बूरा या शक्कर	खड़िया का चूरा	एक गिलास में पानी तथा बूरा डालकर हिलाएं यदि उसमें खड़िया है, तो वह नीचे बैठ जाएगी।
6.	काली मिर्च	पपीते के सूखे बीज	पपीते के बीजों को काली मिर्च से अलग किया जा सकता है क्योंकि वे सिकुड़े, अण्डाकार, हरे-काले रंग के होते हैं।
7.	हल्दी	रंगा हुआ लकड़ी का बुरादा	परखनली में एक चम्मच भर हल्दी डालिए। फिर उसमें नमक के सान्द्र अम्ल की कुछ बूंदे मिलाइए। इससे तुरन्त ही बैंगनी रंग बन जाए, तो हल्दी शुद्ध है। यदि बैंगनी रंग न बने तो उसमें मैटानिल येलो मिला हुआ है।

दिये गये हैं। काफी, चाय, चीनी, शहद आदि के मानक भी स्थिर हो गये हैं। शेष पदार्थों के मानक देश के प्रत्येक भाग के नमूनों की परीक्षा कर के स्थिर किये जा रहे हैं। केन्द्रीय खाद्य मानक समिति यह कार्य लगातार कर रही है।

मिलावट का प्रभाव

खाद्य पदार्थों में मिलावट होने से हमारे शरीर में अनेकों बीमारियां हो जाती हैं। कुछ सामान्य मिलावटों से हमारे शरीर में निम्न कुप्रभाव हो जाते हैं :

खाद्य तेलों, जैसे मूंगफली, तिली, पोस्ता, नारियल आदि में खनिज तेल, आरजीमोन तेल (सत्यानाशी), विदेशों से आयातित सस्ते तेल तथा अलसी का तेल मिला दिया जाता है। इससे हृदय रोग, कैन्सर और पेट के रोगों के बढ़ने की स्थितियां बन जाती हैं। सरसों के तेल में आरजीमोन तेल की मिलावट से नेत्रहीनता, हृदय रोग, ट्यूमर, बेरी-बेरी तथा जलोदर आदि बीमारियाँ हो जाती हैं। शुद्ध घी में वनस्पति घी तथा पशु-चर्बी की मिलावट की जाती है। इससे पेट के कई रोग हो जाने के खतरे हैं। चर्बी की मिलावट से कई बार उल्टी-दस्त होने लगते हैं।

दूध में अरारोट तथा सोयाबीन का दूध मिला होने से हैजा, टाईफाइड, अतिसार आदि रोग हो जाते हैं।

बाजारू मिठाइयाँ, शीतल पेयों, सोडावाटर, आइसक्रीम आदि में अखाद्य रंग, चीनी के बजाय सेकरीन आदि की मिलावट की जाती है। इससे यकृत की खराबी और कैन्सर की संभावनाएं हो जाती हैं। दालों में सस्ती, सड़ी-गली दालें, खेसारी दाल, मिट्टी, दाल के रंग में रंगे कवेलू, ईंट आदि के कण प्रायः मिले होते हैं। अरहर की दाल में खेसारी की मिलावट से कुष्ठ रोग और लकवा हो जाने की संभावना रहती है।

चाय ऐसा पेय है जो अब महानगरों से देहात तक फैल गया है। चाय की पत्ती में सूखा हुआ भूसा, इस्तेमाल की गयी चाय की पत्तियाँ, लकड़ी का रंगा बुरादा आदि मिलाया जाता है। इनसे पेट और आंतों को नुकसान पहुंचता रहता है, तथा चाय भी स्वादहीन लगती है। चावल में टूटे हुए घटिया किस्म के चावल तथा सफेद पत्थर के टुकड़े मिला दिये जाते हैं जो शरीर में पथरी रोग को बढ़ाते हैं।

मांस में अन्य जानवरों का मांस तथा बासी मांस मिला देते हैं। इससे जानवरों को होने वाली बीमारियाँ और पेट के अनेकों रोग हो जाते हैं।

मिर्च मसालों में भी मिलावट की पराकाष्ठा हो गयी है। मिलावटी मसालों से पेट के अनेकों रोग हो जाते हैं। फलों और सब्जियों में ऊपरी मिलावट तो संभव नहीं होती। अतः, दूकानदार सड़ी तथा बासी सब्जियाँ तथा फल मिला देता है जिससे कई रोग हो जाते हैं।

मिलावट पहिचानने की विधियाँ

वैसे तो मिलावट खाद्य पदार्थ का नमूना लेकर रासायनिक जांच प्रयोगशाला में करवाने पर असलियत का पता चलता है, मगर आजकल वैज्ञानिकों ने अनुसंधान करके ऐसी सरल विधियां बतायी हैं जिन्हें बिना विशेष उपकरण के घर पर ही अपनाया जा सकता है। इन विधियों को सारणी-1 में दर्शाया गया है।

भारत सरकार ने खाद्य शुद्धता सम्बन्धी एक केन्द्रीय समिति तथा केन्द्रीय प्रयोगशाला की स्थापना कर रखी है। इसके माध्यम से भारतीय खाद्य का रासायनिक विश्लेषण करने की सर्वमान्य विधि तथा शुद्धता के मानक स्थिर किये जाते हैं।

इसी प्रकार, प्रदेशों में भी खाद्य विश्लेषक तथा निरीक्षक इस कार्य को निष्ठापूर्वक करते हैं। दोषी पाये जाने पर, व्यवसायी को कड़ा दंड दिया जाता है। यद्यपि सरकार अपना दायित्व पूर्ण रूप से निभा रही है, परन्तु हमें भी सरकार का सहयोग कर इस मिलावट को जड़ से उखाड़ देना चाहिए।

• • •

आदमी के अस्तित्व को कायम रखने की दृष्टि से 'क्रियेटिव माइंड' की यही **तलाश** होनी चाहिए कि वह यांत्रिक दर्शन को वैज्ञानिक उपलब्धियों के आधार पर अध्यात्म से जोड़ता रहे।

— हर स्वरुप शर्मा

मस्कुलर डिस्ट्रोफी : निदान एवं उपचार के नूतन आयाम

डा. मदन मोहन बजाज
एवं राजेश कुमार
मस्कुलर डिस्ट्राफी एवं एड्स शोध एवं कल्याण केन्द्र,
आयुर्भौतिकी शोधशाला एवं खगोल भौतिकी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली - 110007.

मस्कुलर (पेशीय) डिस्ट्राफी बच्चों का एक विरल घातक रोग है, परन्तु इसका प्रकोप अब धीरे-धीरे बढ़ रहा है। इससे पीड़ित अब अनेक बच्चे-बड़े दिखायी पड़ते हैं। न मालूम कब किसका बच्चा इसकी चपेट में आजाए, इसलिए हम अपने सीमित पृष्ठों में इस रोग की अधिकतम जानकारी देने का प्रयास कर रहे हैं। इन्ही लेखकों का इस बीमारी के बारे में एक प्रारंभिक लेख विज्ञान परिषद, प्रयाग की मासिक पत्रिका 'विज्ञान' के मई, 1990 अंक में प्रकाशित हो चुका है । इस लेख में, यद्यपि यह रोग प्रमुख रूप से पुरूष वर्ग का बताया गया है, महिलाएं भी इससे पीड़ित होती हैं।

यह रोग किस प्रकार बढ़ता है, इसकी जानकारी देने के लिए हम मनोज गुप्त नामक एक रोगी की कहानी उसी की जुबानी प्रकोष्ठक में दे रहे हैं। लगभग यही कहानी सभी रोगियों की पायी गयी है। यह बच्चा चित्रकारी, कैंची से पेपर कटिंग आदि करके अपने हाथों को क्रियाशील बनाये हुए है। इसने अनेक प्रतिस्पर्धाओं में अनेक पुरस्कार प्राप्त किये हैं। यह बच्चा कविताएं भी करता है।

आधुनिक वैज्ञानिक युग में आज भी कुछ रोग ऐसे हैं जिन पर सैकड़ों वर्षों के शोध के उपरान्त भी ठोस जानकारी का अभाव है। निदान एवं उपचार के अभाव में मानव जाति के लिए ये रोग काल का प्रतिरूप बन गये हैं। ड्यूशेन मस्कुलर डिस्ट्रौफी अर्थात "पिंडलिका पेशीय क्षय" एक ऐसा ही अनुवांशिकी रोग है, जोकि अनुवांशिकी के मूल तत्व 'वंशाणु (जीन)' के बिगड़ने से होता है। मुख्यतः पुरुषों में पाये जाने वाले इस रोग में एक वंशाणु के बिगड़ जाने के पश्चात, उस से डायस्ट्रोफिन नामक प्रोटीन के बनने में सहयोग प्राप्त नहीं हो पाता है, अथवा विनाशी प्रोटीन न बनने की सम्भावना से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है। अतः, प्रोटीन में आयी यह असमान्यता कंकाल पेशियों (Skeletal muscles) को कमजोर बना देती है, जिससे रोगी को चलने तथा अन्य कार्य करने में कमजोरी अनुभव होती है। कुछ वैज्ञानिकों ने इस रोग के अन्य कारण भी सुझाये हैं। वर्ष 1860 में ड्यूशेन नामक वैज्ञानिक ने 13 ऐसे रोगियों का अध्ययन किया था तथा इस रोग से सम्बन्धित कई महत्वपूर्ण जानकारियां दी थीं। यद्यपि ड्यूशेन से दस वर्ष पूर्व वर्ष 1852 में मेरीयान नामक वैज्ञानिक ने भी चार ऐसे ही रोगियों से सम्बन्धित जानकारी दी थी, परन्तु ड्यूशेन ने ही इस पर पूर्ण रूप से प्रकाश डाला और इसे बच्चों की गम्भीर बीमारी बताते हुए इसके कारणों की भी विवेचना की। अतः, आज इसे ड्यूशेन के नाम पर ड्यूशेन मस्कुलर डिस्ट्रौफी कहा जाता है।

यद्यपि यह बीमारी पुरुषों को ही लपेट में लेती है, परन्तु असामान्य वंशाणु माता के द्वारा ही रोगी बच्चों के शरीर में प्रवेश करता है। अतः, माता इस स्थिति में वाहक का कार्य करती है। एक ड्यूशेन मस्कुलर डिस्ट्रौफी के रोगी की बहन के वाहक होने की सम्भावना 50% परिकलित की गयी है। मनुष्य के 46 गुणसूत्रों (क्रोमोसोमों) में लगभग तीन लाख वंशाणु (जीन) मौजूद होते हैं। यह रोग उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) के समय वंशाणु के असामान्य हो जाने के कारण होता है। इस बीमारी के वंशाणु एक्स (x) गुण सूत्र में ही स्थित होते हैं। पुरुष में तथा महिला में 22 जोड़े गुण सूत्र एक जैसे ही होते हैं, परन्तु 23 वें जोड़े में 'पुरुष में एक्स तथा वाई (y) गुण सूत्र होते हैं तथा महिलाओं में दोनों ही एक्स होते हैं। अमेरिका तथा यूरोप में इस विषय पर भारत की तुलना में बहुत अधिक शोध कार्य हो रहा है। अमेरिका की "मस्कुलर डिस्ट्रौफी एसोसिएशन" के शोध कर्ताओं ने 16 अक्टूबर 1986 को इस असमान्य वंशाणु का पता लगाया तथा इसके स्थान की खोज की।

कुछ रासायनिक अणुओं के जोड़े (बेस पेयर) मिलकर वंशाणु का निर्माण करते हैं। ड्यूशेन मस्कुलर डिस्ट्रौफी के

वंशाणु की लम्बाई 18000 किलोबेस होती है। इस वंशाणु में 2 लाख बेस पेयर तथा 14 किलो बेस mRNA होते हैं जोकि 3685 एमिनो अम्ल (430 K.D.) प्रोटीन संयुक्त झिल्ली में रूपांतरित हो जाते हैं जिसे डिस्ट्रौफिन कहते हैं। यह प्रोटीन विनाशी होने के कारण ही संभवतः इसे डिस्ट्रौफिन नाम दिया गया है। ड्यूशेन वंशाणु एक अप्रभावी वंशाणु है। रोगी व्यक्ति के वंशाणु के कुछ हिस्से किसी दूसरे गुणसूत्र से जुड़ जाते हैं जिससे व्यक्ति मस्कुलर डिस्ट्रौफी का रोगी बन जाता है। इसी का माडल बनाने में कनाडा के वैज्ञानिक आर्थर एम. बर्गहैस ने हाल ही में सफलता प्राप्त कर ली है, जिससे आगामी शोध कार्यों में बहुत मदद मिलेगी। शीघ्र ही हम अनुवांशिकी तथा वंशाणु-अभियांत्रिकी की मदद से ऐसी तकनीक प्राप्त कर लेंगे जिससे गर्भस्थ शिशु के रोगी अथवा निरोगी होने की पहचान की जा सकेगी तथा ड्यूशेन रोगी को जन्म देने से बचा जा सकेगा।

ड्यूशेन वंशाणु की खोज से हमें अन्य सम्बन्धित पेशीय रोगों के कारण ज्ञात करने में भी मदद मिली है तथा पेशीय क्षय का कारण भी शीघ्र ही हमें प्राप्त हो जायेगा।

लन्दन के वैज्ञानिक जैक्सन एवं उनके साथियों ने पता लगाया है कि ड्यूशेन रोगियों में विटामिन-ई की मात्रा कम हो जाती है। उन्होंने विभिन्न जानवरों (चूहों आदि) पर प्रयोग द्वारा भी इसी निष्कर्ष को प्राप्त किया है। इसी प्रकार, न्यूयार्क के वैज्ञानिक बिकनेल के अनुसार मस्कुलर डिस्ट्रौफी के रोगियों में विटामिन-ई की कमी तथा एक वायरस काकसेकी (Coxsackie) की उपस्थिति, पेशीय शिथिलता हेतु उत्तरदायी है। पेशियों की सिकुड़न भी इन्हीं का परिणाम कहा जा सकता है। ड्यूशेन मस्कुलर डिस्ट्रौफी में धीमी गति से पेशीय संक्रमण तथा ज़बरदस्त आक्रमण के आधार पर इस रोग को अन्य मायोपैथिक रोगों से अलग प्रकार का रोग कहा जा सकता है। मेरियान नामक वैज्ञानिक ने ऐसे दो रोगियों के पोस्ट मार्टम की रिपोर्ट के आधार पर सिद्ध किया कि इस रोग में रीढ़ की हड्डी तथा न्यूरान स्वस्थ पाये गये, जबकि पेशियाँ ही धीमी गति से क्षय का शिकार बनी थीं। वर्ष 1871 में ड्यूशेन ने चारकोट के साथ मिलकर एक ऐसे ही रोगी का मरणोपरांत शारीरिक अध्ययन किया था तथा निष्कर्ष निकाला कि इस रोग में केवल पेशीय तंत्र ही प्रभावित होता है तथा इसका तंत्रिका तंत्र पर नगण्य प्रभाव पड़ता है। पेशियों का सिकुड़ना तथा फैलना इस रोग का एक सामान्य लक्षण है। बढ़ी हुई तथा फैली हुई पेशियों में स्वस्थ पेशियों की तुलना में कम बल होता है। घुटने तथा एड़ी के जोड़ के स्थान पर सर्व प्रथम बल की कमी अनुभव की जा सकती है जिससे कई दैनिक क्रियाएं प्रभावित हो जाती हैं। बैठे हुए रोगी का उठना तथा सीढ़ी चढ़ना, स्पष्ट रूप से जोड़ में आयी हुई कमी की ओर इंगित करता है। बैठी हुई स्थिति से उठने के लिए रोगी सर्वप्रथम आदतन अपना हाथ घुटने पर लगाता है जिससे उसके घुटने को फैलने हेतु बल मिल सके तथा स्वयं को भी सहारा मिल जाये। तत्पश्चात किसी सहारे से वह खड़ा हो पाता है। अन्ततः एड़ी, घुटने, कोहनी, कंधे, कमर एवं अन्य जोड़ों में यह कमी प्रभावी हो जाती है। मुख की पेशियां तथा डायाफ्राम की पेशियां सबसे अन्त में प्रभावित होती हैं, जो अन्ततः मृत्यु की ओर अग्रसर करने के लिए उत्तरदायी बनती हैं। अंग ढीले-ढीले हो जाते है, तथा पेशियों की सिकुड़न से टेढ़े-मेढ़े लगने लगते हैं, और रोगी को कुर्सी अथवा बिस्तर पर पड़े रहने के लिए मजबूर कर देते हैं। हड्डियों में धातुओं की मात्रा कम होने लगती है। हृदय की पेशियां भी कमजोर होने लगती हैं, तथा कुछ रोगियों में काम करना तक बंद कर देती हैं और रोगी को मृत्युदान दे देती हैं। वैज्ञानिक बोर्पे के अनुसार यह रोग पुरुषों में अधिक पाया जाता है। स्त्रियों की तुलना में इसकी अनुपात दर (6:1) है। दस वर्ष की आयु तक ही सामान्यतः इसका संक्रमण होता है या इसके लक्षण दिखायी देने लगते हैं। इसके पश्चात, बहुत ही कम रोगियों को इसके प्रभाव में आते हुए देखा गया है। सामान्यतः, इसकी संक्रमण दर धीमी होती है, परन्तु न्युमोनिया या टाइफाइड ज्वर जैसे रोग होने के पश्चात यह रोग भयंकर एवं जान लेवा बन जाता है। इस रोग से पीड़ित व्यक्तियों की मृत्यु 20 वर्ष के अन्दर ही हो जाती है (सारणी-1)।

मस्कुलर डिस्ट्राफी का पता लगाने के लिए मुख्यतः तीन विधियां प्रयोग में लायी जाती हैं, सी.पी.के., ई.एम.जी. तथा मस्कुलर बायोप्सी। इन तीनों परीक्षणों के उपरान्त आजकल मस्कुलर डिस्ट्राफी का पता लगाया जाता है। सी. पी. के. ड्यूशेन मस्कुलर डिस्ट्रौफी में बढ़ जाता है। ई. एम. जी. में असामान्य क्रम सभी प्रकार की मस्कुलर डिस्ट्राफी में पाया जाता है। अतः, असामान्य इ.एम.जी.क्रम से ड्यूशेन मस्कुलर डिस्ट्राफी का पता नहीं चलता है। मस्कुलर बायोप्सी में रेशे (Fibre) का आकार बदल जाता है। इन तीन विधियों के अतिरिक्त, दिल्ली विश्वविद्यालय के भौतिकी एवं खगोल भौतिकी विभाग की आयुर्भौतिकी प्रयोगशाला में हम ने एक

ऐसी विधि विकसित की है जिसके माध्यम से ड्यूशेन मस्कुलर डिस्ट्राफी का पता पराध्वनि द्वारा किया जा सकेगा। हम ड्यूशेन मस्कुलर डिस्ट्राफी के रोगियों के खून में आये परिवर्तनों पर शोध कार्य कर रहे हैं। तदनुसार, इस रोग का अन्य बालरोगों से तुलनात्मक अध्ययन कर के यह पाया गया है कि मस्कुलर डिस्ट्रौफी के रोगियों के सीरम का घनत्व स्वच्छ बच्चों के सीरम के घनत्व की अपेक्षा अधिक होता है, जबकि ड्यू. म. डि. रोगियों के प्लास्मा में पराध्वनि की गति बढ़ जाती है।

भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा विकसित इस विधि से ड्यू. म. डि. वंशाणु के प्रभावों तथा खून में इस के कारण आयी असमान्यताओं को समझने में बहुत मदद मिलेगी। इस विधि को एक नैदानिक विधि के रूप में विकसित करने का प्रयास किया जा रहा है, जिससे बहुत कम खर्च में तथा बहुत कम समय में और प्रभावित रोगी की अल्प-आयु में ही इस रोग का पता लगाया जा सकेगा और समय पर उपचार द्वारा रोगी के शरीर में ड्यूशेन वंशाणु के बढ़ते प्रभाव को रोका जा सकेगा।

उपर्युक्त निरीक्षणों तथा प्रभावी वंशाणुओं के आधार पर मस्कुलर डिस्ट्राफी का वर्गीकरण सारणी-2 में दिखाया गया है। हर प्रकार की मस्कुलर डिस्ट्रौफी किसी न किसी वंशाणु के असामान्य होने के कारण होती है। मस्कुलर डिस्ट्रौफी मुख्यतः माता-पिता में से किसी एक अथवा दोनों से वंशानुगत होती है। इसके अतिरिक्त, ऐसे लगभग एक तिहाई रोगी नये उत्परिवर्तनों के कारण भी रोगी बन जाते हैं जिनके पूर्व पारिवारिक इतिहास में इस प्रकार का कोई रोगी नहीं होता है। मुख्य रूप से ड्यूशेन तथा मायोटोनिक डिस्ट्रौफी, मस्कुलर डिस्ट्रौफी के सर्वाधिक प्रभावी तथा भयावह रूप हैं।

ड्यूशेन मस्कुलर डिस्ट्रौफी के रोगियों तथा इसकी वाहक माता के रक्त में उपस्थित सीरम में कई प्रकिण्वों (एन्जाइमों) की सांद्रता असामान्य पायी गयी है। ये प्रकिण्व ही कोशिका का निर्माण करते हैं। अतः, ये कोशिका के आवरण से गायब पाये जाते हैं। ऐसे रोगियों की पेशियों की इलेक्ट्रान सूक्ष्म दर्शी द्वारा जाँच में पाये गये खाली स्थान उपर्युक्त चर्चा को सिद्ध करते हैं। मायोटोनिक डिस्ट्रौफी के रोगियों में असामान्य सतह की चुम्बकशीलता (परमिएबिलिटी) के कारण वैद्युत-चालकता भी असामान्य हो जाती है, जिससे पेशियों को फैलने में अधिक समय लगता है। कोशिका में आयी सतही असामान्यता के कारण ही इस रोग में पेशियक्ता के साथ-साथ अंतः स्रावी, मुख्यतः तंत्रिका तंत्र भी प्रभावित हो जाते हैं। ड्यूशेन पेशीय कोशिकाओं में अनपेक्षित रूप से अत्यधिक कैल्सियम की मात्रा पायी जाती है। कैल्सियम की अधिक मात्रा पेशियों के विनाश में किसी न किसी रुप में सम्बद्ध होने का संकेत देती है। अधिक कैल्सियम मात्रा से प्रोटेस क्रिया बढ़ जाती है। प्रकिण्व मृत ऊतकों को निष्कासित करने में मदद करता है। संभवः यह जीवित ऊतकों पर भी संक्रमण करता होगा। इस विषय पर खोज कार्य जारी है तथा निष्कर्ष अभी अज्ञात है।

मायोटोनिक डिस्ट्रौफी के रोगी की पेशियां इन्सुलिन हार्मोन से सामान्य व्यवहार नहीं करतीं। दोष पूर्ण इन्सुलिन व्यवहार पेशीय तंत्र को असामान्य बना देता है। इसके अतिरिक्त, काल्मोडुलिन पेशियों की सिकुड़ने तथा फैलने की क्रिया को नियंत्रित करने वाला प्रोटीन होता है जिसकी मात्रा मायोटोनिक डिस्ट्रौफी के रोगियों में दोष पूर्ण पायी गयी है। ओकुलोफराइनगीन मस्कुलर डिस्ट्रौफी के रोगी में सम्बन्धित पेशियों में अधिक तथा लम्बी माइटोकोन्ड्रिया (छड़ की भाँति ऊर्जा प्राप्त करने हेतु कोशिका का एक भाग) पायी गयी है। फेसियोस्केपुलो ह्युमेरेल डिस्ट्रौफी में प्रोटीन असामान्य रूप से अलग-अलग अन्तराल के बाद जमा हुआ पाया गया है।

वाशिंगटन विश्वविद्यालय के जेरी लुइस न्युरोमस्कुलर रिसर्च सेन्टर में वैज्ञानिकों ने लम्ब गिरीडिल में तथा ड्यूशेन डिस्ट्रौफी में वसा अम्ल उपापचय में दोष देखा है। वे सब वसा अम्ल उपापचय से सम्बन्धित प्रकिण्वों में दोष की खोज कर रहे हैं, जिससे रोग की प्राथमिक जड़ तक पहुंचा जा सके। विभिन्न देशों में कार्यरत वैज्ञानिकों का मुख्य उद्देश्य इस भयानक रोग के कारणों को अथवा निदान के उपायों को ज्ञात करना ही नहीं है, अपितु वे दिन-रात इसके उपचार हेतु भी प्रयत्नशील हैं। इस सन्दर्भ में किये गये उपायों के विवरण निम्नलिखित है :

औषध उपचार : मस्कुलर डिस्ट्रौफी के उपचार हेतु अब तक विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा कई औषधियों का प्रयोग किया जा चुका है, जिनमें कुछ मुख्य औषधियों का विवरण सारणी-3 में दर्शाया गया है। इन सभी औषधियों में से ऐसी कोई भी औषधि असर कारक नहीं है जो रोग के संक्रमण की रोक थाम अथवा इसकी बढ़वार को पुनः वापिस मोड़ सके, तथापि संक्रमण धीमा करने के उपायों में कुछ हद तक सफलता के सूत्र प्राप्त हुए हैं। अमेरिका की मस्कुलर डिस्ट्रौफी एसोसिएशन के वैज्ञानिकों ने इस रोग के संक्रमण की गति कम करने हेतु

पेनिसिलामाइन तथा विटामिन-ई का सफल प्रयोग किया है। केवल विटामिन-ई मस्कुलर डिस्ट्रौफी को रोकने में असफल रही है, परन्तु पेनिसिलामाइन के साथ मिलकर यह पेनिसिलामाइन की जीव-रासायनिक क्रिया को बढ़ा देती है। जब तक मस्कुलर डिस्ट्रौफी का निदान सम्भव नहीं हो जाता, रोगी को अधिकाधिक शरीर के विभिन्न अंगों के प्रयोग की आदत डालनी चाहिए तथा डाक्टर की सलाह से एंटीबायोटिक दवाएं लेकर यथासम्भव श्वास रोग से अवश्यमेव बचना चाहिए।

शारीरिक उपचार : शारीरिक उपचार के अन्तर्गत हमें निम्न बातों का ध्यान रखना होता है :

अ) शारीरिक स्थिति को ढंग से नियंत्रित करना
ब) पेशियों की सिकुड़न को रोकना
क) पेशीय बल को बनाये रखना
ड) श्वास क्रियाओं को अधिकाधिक बढ़ाना।

इन उद्देश्यों के अन्तर्गत विभिन्न शारीरिक क्रियाओं के द्वारा तथा बैठते समय अथवा अन्य दैनिक क्रियाओं के समय शारीरिक स्थिति को सही बनाये रखने की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। बिना अधिक दर्द अनुभव किये, यथा सम्भव शरीर के सभी जोड़ों का अधिकाधिक प्रयोग किया जाना चाहिए। थक कर दर्द होने लगे, इतना शरीर के किसी भाग पर बल का कदापि प्रयोग न करें। वे सभी योगासन जोकि शारीरिक स्थिति के अनुसार किसी भी जोड़ पर बिना अधिक दबाव डाले किये जा सकें, करना चाहिए। जोड़ों की क्षमता को बनाये रखने हेतु बैठे हुए साइकिलिंग तथा तैराकी बहुत उपयोगी व्यायाम है। श्वास के रोगों से बचने हेतु खुले तथा हरे मैदान में जा कर यथा सम्भव चलने का प्रयास करना चाहिए और लम्बे-लम्बे श्वास लेने चाहिए। प्राणायाम द्वारा डायाफ्राम की क्रिया को अधिकाधिक बनाये रखने का यत्न सर्वाधिक उपयोगी पाया गया है। ड्यूशेन मस्कुलर डिस्ट्रौफी के रोगियों की मृत्यु अधिकतर श्वास क्रिया में अवरोध के कारण होती है। सम्भवतः डायाफ्राम पेशियों की क्रिया धीमी हो जाना इसका मुख्य कारण है। कुर्सीबद्ध रोगियों को मोटापा कम करने हेतु व्यायाम अवश्य करना चाहिए, अन्यथा पेशीय दाब से मृत्यु अधिक निकट आ जाती है।

आर्थोपिडिक सर्जरी तथा प्लास्टिक सर्जरी : सर्जरी के माध्यम से कुछ समय के लिए जोड़ों की क्रियाशीलता को बनाया जा सकता है। पेशीय सिकुड़न को रोकने के लिए विशेषतः भारग्राही जोड़ों (घुटना, टखना आदि) पर सर्जरी के माध्यम से कुछ हद तक कुछ समय के लिए क्रियाशीलता प्राप्त की जा सकती है।

रीढ़ की हड्डी में उत्पन्न वक्रता दूर करने हेतु ल्यूक विधि का उपयोग सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। इससे सिर नियंत्रण, शारीरिक स्थिति तथा शारीरिक अवस्था को निश्चित रूप से सुधारा जा सकता है। यह एक हितकारी एवं सफल प्रयास है। प्रौढ़ रोगियों के लिए दर्द निवारण के अतिरिक्त, यह विधि और कुछ भी नहीं दे सकती है, तथा उनके लिए सर्जरी एक खतरा भी है।

प्लास्टिक सर्जरी के माध्यम से मुख्य रूप से निम्न दो कार्य किये जा सकते हैं :

1) **बंद हो रही आंखों को सर्जरी द्वारा खोलना**

फेसियोस्केपुलोह्युमरल मस्कुलर डिस्ट्राफी में सम्बन्धित पेशियों में कमजोरी के कारण आंखे बंद हो जाती हैं, जिन्हें प्लास्टिक सर्जरी के द्वारा खोला जा सकता है।

2) **बंद मुख को खोलना**

फेसियोस्केपुलोह्युमरल मस्कुलर डिस्ट्रौफी में मुख की समस्त पेशियां कमजोर हो जाती हैं, जिससे मुख टेढ़ा-मेढ़ा हो जाता है। प्लास्टिक सर्जरी के माध्यम से मुखकान्ति को पुनः पाया जा सकता है तथा भोजन हेतु मुख की क्रियाशीलता बढ़ायी जा सकती है।

पेट के रोग : पेट की पेशियों की कमजोरी के कारण पाचन क्रिया पर भी प्रभाव पड़ता है, तथा रोगी अकसर कब्ज़ की शिकायत करता है। मायोटोनिक रोगियों की तो यह मुख्य शिकायत रहती है। ड्यूशेन डिस्ट्रौफी का रोगी भी कब्ज एवं पेट में गड़बड़ की शिकायत करता है। अतः, कब्ज दूर करने के सामान्य सभी उपाय किये जाने चाहिए तथा खुली हवा में श्वास लेने का अभ्यास करना चाहिए। प्राणायाम, योगासन आदि क्रियाओं के माध्यम से भी पेट को सामान्य रखने का प्रयास सफल सिद्ध हो सकता है।

श्वास के रोगों से बचने के उपाय : मस्कुलर डिस्ट्रौफी के रोगी के लिए धूम्रपान करना मृत्यु को साक्षात आमंत्रित करना है। इससे कफ प्रक्रिया को अत्यधिक बढ़ावा मिलता है, तथा डायाफ्राम की शक्ति कम हो जाती है। कफ निष्कासन के सभी उपाय किये जाने चाहिए जिससे छाती को संक्रमण से बचाया

जा सके। ड्यूशेन डिस्ट्राफी के अधिक संक्रमित रोगियों में एक अन्य समस्या देखी गयी है जिसे (REM) कहा गया है। रात्रि में सोते समय स्वप्नावस्था में आक्सीजन की कमी से ऐसे रोगी मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं। यूरोपियन एलाइन्स आफ मस्कुलर डिस्ट्राफी एसोसियेशन रात्रि में सोते हुए ऐसे रोगियों को मृत्यु की ओर जाने से रोकने हेतु प्रयत्नशील है। ऐसे रोगियों के लिए उन्होंने दाब युक्त श्वासक बनाया है जिसे विशेष प्रकार के चुने हुए ड्यूशेन केकर तथा लिम्ब गिरील रोगियों पर प्रयोग किया जा रहा है। इस प्रयोग के आशाजनक परिणाम प्राप्त हो रहे हैं। रीढ़ को हड्डी की वक्रता को सीधा करने के उपाय करने से भी श्वास रोगों के आक्रमण से बचा जा सकता है। अकसर न्युमोनिया ही ऐसे रोगियों के लिए सर्वाधिक घातक बनता है, जिससे एंटी बायोटिक आदि दवाओं का प्रयोग करके बचना चाहिए।

बेकर एवं मायोटोनिक रोगियों में भी रात्रिकालीन मृत्यु दर काफी अधिक है। माजिनडोल का प्रयोग ऐसे रोगियों में कुछ हद तक असर कारक रहा है, जिसके प्रयोग से अगले दिन रोगी व्यक्ति अधिक चुस्त-दुरुस्त दिखायी देता है।

मनोवैज्ञानिक चिकित्सा : मनोवैज्ञानिक विधियों से रोगी में जीने की चाह तथा क्रियाशीलता को अधिकाधिक समय तक बनाया जा सकता है। रोगी के मन से उपेक्षित भावनाओं को निकालना सर्वाधिक आवश्यक होता है। ऐसे रोगियों पर दया न करें तथा उनके शरीर से अधिकाधिक कार्य करवाएं। उनके साथ धीमे चलें। सीढ़ियां चढ़ने हेतु प्रोत्साहित करें। एक बार रोगी के अन्य व्यक्तियों पर निर्भर होने के बाद उसके हृदय से निर्भरता की भावना यथा-सम्भव न निकालें। उससे पूँछ कर उसकी बैठने की स्थिति में समय अन्तराल के साथ परिवर्तन करते रहें। उसकी अभिरुचियों का विशेष ध्यान रखें। रोग के बढ़ने के साथ-साथ रोगी की जीने की चाह कम होती जाती है। कुछ रोगियों में कला की अभूतपूर्व योग्यता होती है। एक तेरह वर्षीय रोगी मनोज गुप्त की कला का नमूना चित्र में दिखाया गया है। ऐसे रोगी को ऐसे शारीरिक कर्म बताने चाहिए जिन्हें वह आसानी से तथा रूचि पूर्वक कर सकता है। पूर्णकालिक कार्य दिलवाने का प्रयास करें। ऐसे रोगी को किसी गैस एजेंसी में कार्य दिलवाया जा सकता है, तथा घर पर ही घरेलू लघुउद्योग प्रारम्भ किया जा सकता है। मनोज गुप्त का पेपर कटिंग कार्य उसकी शारीरिक अवस्था को देखते हुए एक अविश्वसनीय कार्य कहा जायेगा। उसकी उंगलियां सुन्दर डिज़ाइन बना रही हैं तथा क्रियाशील और कर्मरत हैं। अतः, यथा सम्भव कर्मरत रहने का प्रयास करें। शिक्षा का उचित प्रबन्ध करें। खाली दिमाग शैतान का घर होता है तथा एक बार निराशा घर कर लेने पर, ऐसे रोगी स्वयमेव मृत्यु को आमंत्रित कर लेते हैं। अतः, संगीत, विभिन्न कार्य, कला, अभिरुचियां तथा शिक्षा आदि माध्यम से रोगी को यथा-सम्भव कार्यरत रखने का प्रयास करना चाहिए।

विश्व के सभी भागों में मस्कुलर डिस्ट्राफी एसोसियेशनों की स्थापना हो चुकी है तथा रोगियों को विभिन्न सुविधाएं (शिक्षा एवं देखभाल केन्द्र) प्रदान की जाती हैं। भारत में आज भी सुविधाओं के अभाव में इस रोग का एक केन्द्र बनना सम्भव नहीं हो सका है। विगत कई वर्षों से मछलीपटनम (कर्नाटक) में I.M.D.A. नामक संस्था ऐसे रोगियों को नयी शोध-चर्चा से परिचित कराने का प्रयास कर रही है, परन्तु शोध के क्षेत्र में भारत का योगदान लगभग शून्य ही रहा है। इसी उद्देश्य से दिल्ली विश्वविद्यालय के भौतिकी एवं खगोल भौतिकी विभाग में मस्कुलर डिस्ट्राफी शोध एवं कल्याण केन्द्र की स्थापना की गयी है, जहाँ कई वैज्ञानिक आवश्यक सुविधाओं के अभाव में भी इस जान लेवा बीमारी के विरूद्ध युद्ध कर रहे हैं, तथा विजय श्री हेतु कृत-संकल्प हैं। विभिन्न अन्य स्वैच्छिक संस्थाओं को भी इस क्षेत्र में आगे आना होगा। यह एक विशद कार्य है। समस्त भारत के सम्बन्धित वैज्ञानिकों एवं रोगियों से हमारा आग्रह है कि इस संस्था की सदस्यता ग्रहण करने हेतु सम्पर्क करें तथा इस कार्य के केन्द्रीकरण में सहयोग दें। भारत के केन्द्रों के पते निम्नलिखित हैं :

मस्कुलर डिस्ट्राफी शोध एवं कल्याण केन्द्र
आयुर्भौतिकी शोधशाला,
भौतिकी एवं खगोल भौतिकी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली - 110 007

आइ.एम.डी.ए., 21-136 बट्चूपेट
मछलीपटनम - 521 001

• • •

विभिन्न देशों में मस्कुलर डिस्ट्रौफी से संबंधित कल्याण केन्द्रों के पते इस लेख के लेखकों से आवश्यकता पड़ने पर प्राप्त किये जा सकते हैं।

— संपादक

सारणी - 1

क्रम	देश का नाम	संक्रमण आयु (वर्ष)	कुर्सी आबद्ध आयु (वर्ष)	मृत्यु समय आयु (वर्ष)	संदर्भ
1.	उत्तरी इग्लैंड	2.6	9.5	18.7	गार्डनर मेडविन (82)
2.	इंग्लैण्ड (द.)	3.07 ± 1.75	9.05 ± 2.02	15.57 ± 2.82	इबोविटज (70)
3.	कनाडा	–	9.94 ± 1.57	16.5 ± 2.25	मरफी (85)
4.	पोलैंड	2.3 ± 1.46	10.1 ± 1.90	18.1 ± 3.31	घस मनोवा (86)
5.	फ्रांस	3.15 ± 1.68	10.16 ± 1.76	17.72 ± 3.76	रिज्यू (79)
6.	ब्राजील	3.32 ± 1.79	9.55 ± 1.79	17.05 ± 3.56	जटज (86)
7.	भारत	4.2 ± 1.5	8.5 ± 1.5	18 ± 2	राजेश कुमार (89)
8.	जर्मनी	3.07 ± 2.27	9.36 ± 2.62	14.71 ± 3.76	बेकर (62)
9.	जापान	3.7 ± 1.9	10.8 ± 1.9	18.0 ± 2.9	मुगीसा (85)
10.	स्विटजरलैंड	2.89 ± 1.29	9.81 ± 1.5	17.79 ± 3.22	मोसर (86)
11.	स्काट लैंड	3.26 ± 1.74	9.39 ± 1.69	16.27 ± 3.12	मर्सी (86)

सारणी - 3

क्रम	औषधि	रोगी (ड्यू. म. डि.)	उम्र (वर्ष)	स्वस्थ	उम्र (वर्ष)	अंक	सन्दर्भ
1.	ल्युसिन (एमिनो अम्ल)	47	9.2	44	9.8	5	मेंडल आदि
2.	प्रडिनीसोलोन (स्टेरोयेड) 1.5 मि.ग्रा/कि.ग्रा./दिन	33	5-15	17	2-20	2	ब्रुक आदि
3.	प्रडिनासोलोन (स्टेरोयेड) 2 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन	20	3-16	38	1-8	1	डिसिल्वा आदि
4.	एलो प्युरिनोल (100 मि.ग्रा/दिन)	21	3-16	3	–	4	हेटर आदि
5.	अ) एलोप्युरिनोल 300 मि.ग्रा/दिन ब) एडिनिन ३०० मि.ग्रा/दिन	7	8-15	7	8-17	4	बर्टोरिनी आदि
6.	कलूनारिडिन 0.1-0.25 मि.ग्रा./कि.ग्रा./दिन	13	5-14	13	5-14	5	डिक आदि
7.	निफेडिपिन .75-2 मि.ग्रा/कि.ग्रा/दिन	52	2-27	15	–	5	मोकसले आदि
8.	डाइलरियाजेम 8 मि.ग्रा/कि.ग्रा/दिन	11	6-16	11	6-18	4	वर्टोरिनी आदि
9.	मिथाइसरजाइड 8 मि.ग्रा/दिन	8	6-8	–	–	3	पेटन तथा जेलर
10.	इसाकोसोनाइन 25 मि.ग्रा/कि.ग्रा/दिन	9	6-10	10	6-8	6	हेकमट्ट आदि

सारणी - 2

क्रम	वंशानुगत लक्षण	निदान	संक्रमण आयु	मुख्य लक्षण
1.	X - वंशाणु सम्बन्धित	ड्यूशेन डिस्ट्राफी	3-5 वर्ष	कंकाल पेशियों में कमजोरी, एड़ी व जोड़ो का मुड़ना
2.	X - वंशाणु सम्बन्धित	बेकरडिस्ट्राफी	3-16 वर्ष	ड्यूशेन के समान ही घातक, परन्तु इसमें संक्रमण धीरे-धीरे होता है ।
3.	आटोसोमल अप्रभावी	लिम्ब गिरीडल	20-30 वर्ष	लड़का व लड़की दोनों में प्रभावी, पेशीय कमजोरी, धीमा संक्रमण, सीरम किरोटिन काइनेस के स्तर सामान्य, प्रभावी की माता ड्यूशेन की वाहक
4.	आटोसोमल अप्रभावी	बाल्य मस्कुलर डिस्ट्राफी	2-5 वर्ष	लड़का व लड़की, दोनों में प्रभावी, ड्यूशेन के समान ही लक्षण, परन्तु प्रभाव धीमा । कुर्सी-आबद्ध होने का समय लगभग 20 वर्ष, ECG में असमान्यता, धीमें V_1 में R लम्बी तरंगें ।
5.	आटोसोमल अप्रभावी	जन्मजात डिस्ट्रौफी	जन्म से	दिमागी कमजोरी, दिल के रोग, श्वसन तंत्र में गड़बड़ी, संक्रमण स्तम्भ तथा मुखीय पेशियों में कमजोरी ।
6.	आटोसोमल प्रभावी	फेसियोस्केपुलो-ह्युमरल	किसी भी समय	मुखीय तथा अंसमेखला (छाती) पेशियों में कमजोरी । घुटने से एड़ी तक की पेशियां प्रभावित, दिल व दिमाग अप्रभावी, कुछ सामान्य रोगियों में हल्का बहरा पन तथा चक्षु रोग ।
7.	आटोसोमल प्रभावी	विलम्बित प्रभावी परोकसीमल	प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था	पेशियों में कमजोरी, लिम्ब गिरीडल के समान लक्षण, संक्रमण बहुत धीमा ।
8.	आटोसोमल प्रभावी	डिस्टिल	विभिन्न आयु (मुख्यतः प्रौढ़ावस्था)	हाथ व पैरों की पेशियां असमान्य, नितम्ब तथा कंधे प्रभावित ।
9.	आटोसोमल प्रभावी	नैत्र	प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था	नेत्र की पेशियों में कमजोरी तथा सम्बन्धित तंत्रों में असमानता ।
10.	आटोसोमल प्रभावी	ओकुलोफराइनगील	40-70 वर्ष प्रौढ़ावस्था	नेत्र पेशियों में कमजोरी तथा श्वासनली असामान्य ।
11.	आटोसोमल प्रभावी	मायोटोनिक डिस्ट्राफी	मुख्यतःतरूणावस्था	हाथ, हथेली, गर्दन तथा मुख की पेशियों में कमजोरी, दिल तथा आंखों के मुख्य तंत्रिका तंत्र असमान्य ।

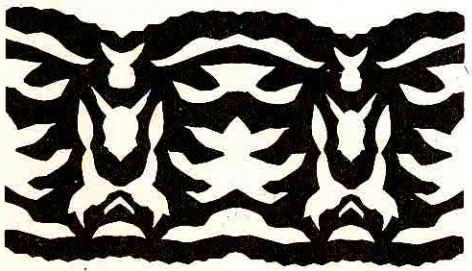

एक रोगी की आत्म कथा

अपने हाथों की क्रियाशीलता बनाये रखने हेतु प्रयास रत मनोज गुप्ता, एक सुन्दर चित्र बनाते हुए।

मेरा नाम मनोज गुप्त है। मेरा जन्म 17 फरवरी 1976 को हुआ। मेरे परिवार में किसी लड़के का जन्म 25 वर्षों बाद होने के कारण, मेरे पिताने खूब खुशियां मनायीं। जब मैं चार वर्ष का था तो मेरी पिंडलियां भारी-भारी सी थीं, किन्तु सबने सोचा कि इसके पांव की बनावट ही ऐसी होगी। जब मैं पार्क में साथियों के साथ खेलने जाता, तो मैं ज्यादा तेज़ नहीं दौड़ पाता था। जब मैं बैठ कर उठता तो मुझे घुटने पर हाथ रखना पड़ता था। मुझे बार-बार बुखार हो जाता था। ऐसे ही बुखार में मुझे एक बार डाक्टर के पास ले जाया गया। उन्होंने मेरी पिंडलियों को देख कर बताया कि मेरी बीमारी का नाम **ड्यूशेन मस्कुलर डिस्ट्रोफी** है जिसका कोई इलाज नहीं है। उस समय मेरी उम्र साढ़े चार साल की थी। उसके बाद मुझे एक के बाद एक बहुत से डाक्टर, अस्पतालों में ले जाया गया लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। गो. ब. पंत अस्पताल के डाक्टरों ने जर्मनी से कोई इंजेक्शन (लिवाडोसिन) मंगवाने के लिए कहा। मेरे पिताजी ने वह दवा मंगवा दी। यह एक दिन छोड़कर एक दिन ग्लुकोज (डैक्सट्रोज) की बोतल में 1 मि.लि. डालकर नसों के द्वारा छह महीनों तक चढ़ायी गयी, लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। उसके बाद, होमियोपैथी, यूनानी दवाइयां और योगासन आदि सब कुछ किया। उसके बाद मेरे दाहिने पांव में बायोप्सी की गयी जिसमें टांके लगने की वजह से मैं सीधे पांव की एड़ी उठाकर चलने लगा। धीरे-धीरे बाएं पाँव की भी एड़ी उठा कर चलने की आदत हो गयी। धीरे-धीरे मैं बैठता गया। पहले जीना चढ़ने में परेशानी हुई, फिर धीरे-धीरे चलने में कठिनाई हुई, जैसे चलते-चलते जब मैं गिर जाता, तो एकदम उठ नहीं पाता था। फिर, चलना बिलकुल बन्द हो गया, लेकिन किसी चीज़ को पकड़ कर थोड़ा-थोड़ा खड़ा हो जाता था। उसके बाद, एक दिन ऐसा आया कि मैं बिलकुल बैठ गया। मैंने पढ़ना फिर भी जारी रखा क्योंकि मैं स्कूटर में जाता था, और स्कूटरवाले चाचा मुझे गोदी में उठाकर कक्षा में बैठा देते थे, और वहाँ मेरे दोस्त मेरा ध्यान रखते थे। अगर कुछ लिखने का काम होता था, तो वे मेरी कापी खोल देते और पेन हाथ में पकड़ा देते थे। कभी-कभी वे मेरे लिए लिख भी दिया करते थे। मुझे खाना खिलाना, सीधा करना, हाथ-पाँव ठीक करना, यह सब भी वे कर देते थे। मैं जिस स्कूल में पढ़ता था, वहाँ पढ़ाई केवल सातवीं कक्षा तक ही थी। इसलिए, सातवीं के बाद मुझे पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी। एक डाक्टर ने मुझे कैंची हाथ में देने के लिए कहा जिससे मेरे हाथ भी जम न जाएं। मैं काग़ज़ पर कटिंग करके डिजाइन बनाता रहता या ड्राइंग शीट पर पेन्टिंग करता रहता। मैं अब अपने आप अपने शरीर के किसी भी अंग को नहीं हिला सकता हूँ। खुजली आती है तो भी मुझे दूसरे को आवाज देनी पड़ती है। पानी पीने के लिए मुझे एक आदमी गोदी में बैठाता है, तब दूसरा पानी पिलाता है, लेकिन हाथों से काम करते रहने से मेरे हाथ काम कर रहे हैं। मेरे घर वाले सब मेरी सहायता करते हैं और प्यार करते हैं। यह सब मैं अपने हाथ से लिख रहा हूँ। मेरी दादी कभी-कभार मजाक में कहा करती थीं कि कागज़ के डिजाइन काटने से कौन-से मैडल मिलेंगे? मुझे मैडल मिल गया। मैंने 'पराग' में रंग भरने की प्रतियोगिता में दो बार इनाम भी जीता, और डिजाइनों के लिए भी कई पुरस्कार पाये। मुझे गज़ल सुनने का बहुत शौक है। मुकेश और सहगल के गाने भी बहुत अच्छे लगते हैं। अब मैं खुद भी गज़ल लिख लेता हूँ। अभी तक तो ऐसे ही दिन व्यतीत हो रहे हैं।

— मनोज गुप्त

पुत्र, श्री सुरेन्द्र मोहन गुप्त

1723, सोहन गंज, सब्जी मंडी, दिल्ली - 110 007

घर के बच्चे और बड़े सभी मनोज का ध्यान रखते हैं, कोई भी उसे किसी बात की कमी महसूस नहीं होने देता है। अगर किसी बात से घर का वातावरण उदास हो जाए, तो मनोज ही कोई चुटकुला छोड़कर सबको हँसा देता है। जब कभी मैं सोचता हूँ, मनोज का भविष्य क्या है, तो दिल कांप जाता है। इस हालत में भी वह अपने को खुश रखता है, और सब को हँसाने की कोशिश में लगा रहता है। जो कोई भी उससे एक बार मिल लेता है, वह बार बार उससे मिलना चाहता है। उसमें अपनी ओर आकर्षित करने की अजीब क्षमता है।

— सुरेन्द्र मोहन गुप्त

भयानक और विनाशकारी भूकंप

दयाशंकर पाटिल
56, अय्यर छात्रावास
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी - 221005

मानव आकाश में तो चन्द्रमा तक पहुँच गया है, परन्तु उसे अपनी स्वयं की धरती के गर्भ की जानकारी बहुत कम है। भू के कंपन से धरातल पर मानव निर्माण कार्य उध्वस्त हो जाता है। भूकंप के बारे में मोटे तौर पर जो जानकारी उपलब्ध है, वह प्रस्तुत है।

भूकंप और ज्वालामुखी पर्वतों का घनिष्ट संबंध है। पृथ्वी की सतह का जन्म जब से हुआ, तभी से भूकंप का भी जन्म हुआ है। कारण यह है कि लावारस के अन्दर भरी वायु और गैसें बाहर निकलती हैं, और लावारस भी उन वायु तथा गैसों के दबाव से उछलता है। पृथ्वी की सतह जमने के बाद इसमें एक और कारण भी आ मिला। यह सतह नीचे के लावारस पर तैरती है। भूकंप पैदा करने वाली ये प्रक्रियाएँ आज भी कम या अधिक अंश में जारी हैं।

जहाँ पर पृथ्वी के स्तरों के अन्दर परतों में स्तर-भंग हुआ हो, वहाँ पर चट्टानें एक दूसरे पर फिसलती हैं, जैसे हम जब टेबल पर ताश के पत्ते फेंकते हैं, तो वे सरकते हैं, उसी प्रकार ये चट्टानें भी सरकती हैं। भूकंप के समय, ऐसे स्तर-भंग में प्रक्षोभ होता है और टूटी-फूटी परतें 12 से 35 कि.मी. या ज्यादा दूरी तक खिसकती हैं। इससे ऊपरी परतों में खलबलाहट पैदा हो जाती है। जब भारी भूकंप आता है, तो इसे बड़े मैदानों में पृथ्वी की लहरों के रूप में देखा भी जा सकता है। इन लहरों में बड़ी चट्टानें भी उछलती हैं। जिस प्रकार पानी में से निकलने पर कोई कुत्ता पानी को झटकता है, उसी प्रकार भूकंप के समय पहाड़ों से बड़ी-बड़ी चट्टानें, शिलाएँ, वृक्ष तथा मिट्टी उड़कर गिर जाती है।

भारतखंड में सबसे पुरानी भूकंप की कथा अरब के इतिहासकारों ने लिखी है। उनके अनुसार वर्ष 893 के अन्त में दाइबुल नाम के बन्दरगाह का विनाश हुआ था। इस भूकंप में करीब डेढ़ लाख आदमी मारे गये थे। 16 वीं सदी के प्रारंभ में 6 जुलाई 1505 के एक बड़े भूकंप का उल्लेख एक मुस्लिम हस्तलिखित पुस्तक में मिलता है। इस भूकंप में भारत तथा अफगानिस्तान को एक दिन में 33 झटके लगे थे और भारी जानमाल का नुकसान हुआ था।

वर्ष 1934 में इसी स्थान पर आये भूकंप को लोग भूल भी नहीं पाये थे कि 21 अगस्त 1988 को मात्र एक मिनट तक रहे एक अन्य प्रलयकारी भूकंप के दो-तीन झटकों ने देश के उत्तर पूर्वी भागों, विशेषकर विहार व नेपाल को झकझोर कर रख दिया। इस प्रलयकारी भूकंप का पहला झटका सबसे तेज था। भूकंप मापक, रिच्टर स्केल पर इसकी तीव्रता 6.7 थी। इस भूकंपीय झटके ने 10 से 20 सेकंड के भीतर विहार व नेपाल में भयंकर तबाही मचा दी। सैकड़ों लोगों की जाने गयीं, हजारों लोग घायल, बेघर तथा अनाथ हो गये और देखते ही देखते सुन्दर अट्टालिकाएँ खंडहरों के ढेर में बदल गयीं।

तीन प्रकार के स्थान

भूकंप कहाँ तथा किस स्थान पर आ सकता है ? क्या यह प्रलयकारी भूकंप कहीं भी आ सकता है ? लगभग दो सौ वर्षों तक भूकंपों का अध्ययन करने के बाद वैज्ञानिकों ने अनेकों आंकड़े एकत्रित किये हैं। भूवैज्ञानिकों का कहना है कि भूकंप आने के स्थान तीन तरह के हो सकते हैं। एक तो वे स्थान, जहाँ पर समुद्री तहें धरती के क्षेत्र में घुसपैठ किये हुए हैं; जैसे अलास्का के सागर तट, जापान, इंडोनेशिया आदि। दूसरे वे स्थान हैं, जहाँ पृथ्वी की प्लेटें एक-दूसरे के साथ रगड़ खा रही हैं, जैसे कैलिफोर्निया तथा तुर्की आदि, तथा तीसरे प्रकार के वे स्थान हैं, जहाँ विभिन्न महाद्वीप एक-दूसरे की ओर खिसक रहे हैं, जैसे भारत और चीन के बीच का सीमावर्ती प्रदेश। इन तीनों प्रकार के स्थानों पर भूकंप पृथ्वी के आन्तरिक विक्षोभ से ही आते हैं। इस आधार पर वैज्ञानिकों ने विश्व को दो भूपट्टियों में बाँट रखा है, जहाँ पर सर्वाधिक भूकंप आते हैं। भूकंप का एक पट इटली से यूगोस्लाविया, ग्रीस, रूमानिया, बल्गेरिया, तुर्की, इराक, इरान, अफगानिस्तान, पश्चिम पाकिस्तान, कश्मीर से आसाम तक का हिमालय का प्रदेश, हिंदुकुश, काराकोरम, एशियाई रूस के दक्षिणी राज्य, तिब्बत, बर्मा, स्याम, हिन्दचीन,

इंडोनेशिया और फिलिपाइंस तक फैला है। दूसरा पट उत्तर प्रशान्त सागर में जापान, क्युराइल के टापू और रूस तथा अमरीका को जोड़ने वाले एल्युशियन टापुओं में से होकर यह अमरीका में अलास्का तक पहुँचता है। वहाँ से यह अमरीका के पश्चिमी किनारे पर कैलिफोर्निया, मैक्सिको और मध्य अमरीका में से होकर दक्षिण अमरीका का प्रशान्त महासागरीय तट तथा जापान से आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड तक के संम्पूर्ण जलीय व थलीय क्षेत्र को अपने में समा लेता है। इस प्रकार, ये क्षेत्र सक्रिय भूकंप-क्षेत्र के अर्न्तगत आते हैं।

भूकंप की दृष्टि से भारतखंड के तीन हिस्से किये जा सकते हैं। ओखा से कच्छ तक, पश्चिमी पाकिस्तान, समग्र हिमालय और उसकी तलहटी का भाग, जिसमें गंगा-यमुना तथा ब्रह्मपुत्र के प्रदेश का भी समावेश होता है। दक्षिण भारत का प्रदेश कम से कम भूकंप के क्षेत्र में है क्योंकि वहाँ लावारस की जमी मोटी ठोस परत है। इनके बीच का पटल साधारण भूकंप के क्षेत्र का है। दक्षिण का उच्च पठार जो लावारस के जमने से बना है, 10,000 फुट मोटा है। इस तथ्य की पुष्टि इस बात से भी की जा सकती है कि भारत में अब तक आये भूकंपों में से 98% भूकंप उत्तरी भारत में तथा केवल 2% दक्षिण भारत में आये हैं।

भूकंप क्यों और कैसे ?

अधिकतर भूकंपों का जन्म 5 मील तक की गहराई में होता है, परन्तु कोई 500 मील की गहराई में भी होता है। वैज्ञानिक दृष्टि से भूकंप का रहस्य समझने के लिए सर्वप्रथम पृथ्वी की रचना समझनी होगी। जैसा कि हम जानते हैं कि करोड़ों वर्ष पहले पृथ्वी आग का गोला थी। सूर्य का एक भाग टूट कर अलग हो गया था, जो बाद में ठंडा होने पर पृथ्वी बना। इस ठंडे होने की प्रक्रिया में करोड़ों वर्ष लग गये तथा अब तक यह क्रिया जारी है। अब तक सिर्फ पृथ्वी की ऊपरी परत ही ठंडी हो पायी है, जो लगभग 80 कि.मी. मोटी है। यही वह परत है, जिस पर हम निवास करते हैं। इस परत के ऊपर मिट्टी तथा पहाड़ आदि हैं और नीचे ठोस चट्टानें। इस परत के नीचे गरम तरल पदार्थ है, जिस पर दस ठोस प्लेटों से बना धरातल अर्थात परत तैर रही है। ये प्लेटें एक-दूसरे के साथ सटकर बहुत धीमी गति से चलती रहती हैं। इनकी गति 1-6 से.मी. प्रति वर्ष होती है। इन प्लेटों के नीचे जो तरल पदार्थ है, उसमें प्रायः उबाल तथा प्रक्षोभ होते रहते हैं, जिससे इन प्लेटों या परत पर दबाव बढ़ जाता है। नीचे से आते इस असह्य दबाव से परतें ऊपर उठ आती हैं, प्लेटों की गति बढ़ जाती है तथा जैसे ही कोई दो प्लेटें टकराती हैं, तो वे टूट-फूट जाती हैं। टूटी-फूटी

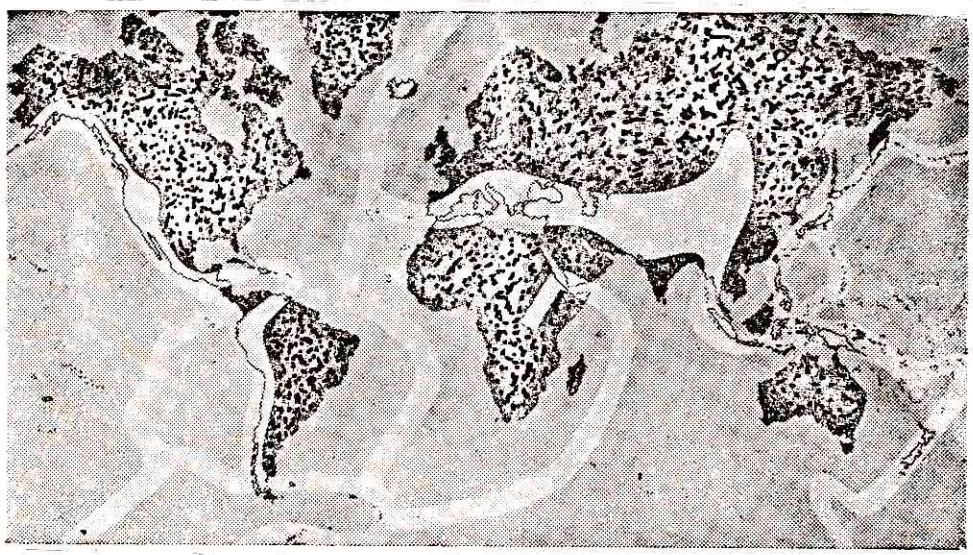

इस मानचित्र में भुकम्प होने की सम्भावनावाले क्षेत्र सफेद पट्टी से बताये गये है। सारा उत्तर भारत, हिमालय तथा उसमें निकलनेवाली सभी पर्वतमालाओं के प्रदेशों में भूकम्पों की सम्भावना है।

परतों का कुछ हिस्सा ऊपर उठ जाता है और कुछ नीचे दब जाता है। इससे पृथ्वी पर भूकंप आ जाता है। पृथ्वी की हलचल को भूकंप का नाम देने वाले वैज्ञानिक का नाम रॉबर्ट मैलट है। भूकंप की शुरूआत पृथ्वी की सतह से काफी नीचे तरल चट्टानों में होती है। इस स्थान को वैज्ञानिकों ने भूकंप का 'नाभीय केन्द्र' नाम दिया। नाभीय केन्द्र के ठीक ऊपर, पृथ्वी की सतह वाले स्थान को अधिकेन्द्र कहा गया। भूकंप का प्रभाव क्षेत्र लगभग एक लाख वर्ग मील तक होता है, लेकिन कभी-कभी यह बढ़ कर 10-12 लाख वर्ग मील तक हो जाता है।

भूकंप की भविष्यवाणी

भूकंप आने की भविष्यवाणी करना उतना आसान काम नहीं है जितना मौसम तथा बाढ़ आदि का है। विभिन्न स्थानों पर भूकंप आने के भिन्न-भिन्न कारण हैं। वैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न स्थानों पर अनेक आंकड़े व जानकारियां एकत्रित की हैं। जैसे, भूकंप आने के पहले भूमि का लगभग एक-दो मीटर ऊपर उभर आना, निकटवर्ती जल स्तर अचानक बढ़ जाना तथा फिर यथावत हो जाना, कुओं में रेडान गैस का बढ़ जाना, भूमिगत जल में अनेक रासायनिक परिवर्तन हो जाना, क्योंकि भूकंप आने से कुछ दिन पूर्व हाइड्रोजन तथा कार्बनडाइआक्साइड के आयनों की मात्रा पहले की अपेक्षा दुगुनी या तिगुनी हो जाती है। इसके अलावा, जीव-जन्तुओं के व्यवहार में बदलाव आना भूकंप के संकेत हैं। जीव-जन्तुओं को भूकंप का आभास कैसे हो जाता है इसका कोई वैज्ञानिक प्रयोग नहीं किया जा सका है, परन्तु वैज्ञानिकों का विचार है कि पृथ्वी से उठनेवाली रेडान गैस द्वारा उन्हें भूकंप का पूर्वानुमान हो जाता है। जमीन में रहने वाले जीव-जन्तुओं के व्यवहार में बदलाव का कारण पृथ्वी के भीतरी ताप में बदलाव माना जाता है। इसकी पुष्टि उस समय हुई, जब कैलिफोर्निया में भूकंप आने के आठ घंटे पहले जंगल के तमाम चूहे बिलों में से निकलकर सड़क पर दौड़ते देखे गये।

उक्त कारणों को दृष्टिगत रखकर वैज्ञानिकों ने भूकंप की भविष्यवाणियां भी की हैं तथा कुछ हद तक सफल भी रहे हैं। 4 फरवरी, 1975 को चीन के मंचूरिया स्थित हाइचेंग नगर में अत्यंत विनाशक भूकंप आया था, जिसने लगभग 99% इमारतों को ढेर में बदल दिया था। चीन के वैज्ञानिकों ने भूकंप के बारे में पहले से ही अनुमान लगा लिया था तथा भूकंप के साढ़ेचार घंटे पहले ही नगर को खाली करवा कर लाखों लोगों के प्राण बचा लिये थे। इसी प्रकार, ओसाका तथा मैक्सिको में आये भूकंप की जानकारी भी वैज्ञानिकों ने पहले से ही दे दी थी। भारत ने भी 1970 में आये हिमाचल प्रदेश के तथा 1969 और 1974 में आये शिलांग के भूकंप के बारे में पूर्वानुमान लगा लिया था। कई भविष्यवाणियां गलत भी साबित हुई हैं, जैसे 1975 में चीन में जिन वैज्ञानिकों ने भूकंप की भविष्यवाणी की थी, वही वैज्ञानिक 1976 में आये भूकंप के संकेत भी नहीं दे सके थे। इसी प्रकार, 1923 में जापान में भूकंप की सही भविष्यवाणी की गयी थी, लेकिन 1973 में पुनः भविष्यवाणी की गयी तो कोई भूकंप नहीं आया।

विश्व के बड़े दिग्गज तथा कुशल वैज्ञानिक इस प्रकार के यंत्र बनाने में लगे हैं जो भूकंपों के बारे में सही जानकारी देने में सक्षम हों सकें, जिनका उपयोग करके लाखों लोगों के प्राणों तथा सम्पत्ति की रक्षा की जा सके। • • •

(पृष्ठ 11 से आगे)

1839 कुक और व्हिटस्टोन ने लंदन और पश्चिम ड्रेटन के बीच 21 कि.मी. लम्बी टैलीग्राफ लाइन का निर्माण किया।

भारत में डॉ ओ - साफनेसे ने कलकत्ता और डायमन्ड हारबर के बीच 35 कि.मी. लम्बी टैलीग्राफ लाइन बिछाई। इस कार्य में करीब 7 कि.मी. लम्बी नदी के बीच टैलीग्राफ लाइन बिछाई गई थी।

1841 चार्ल्स व्हिटस्टोन ने पहली मुद्रण मशीन का अविष्कार किया तथा एक समय-विभाजित बहुविध टैलीग्राफ प्रणाली का प्रस्ताव किया।

1842 वैज्ञानिक ग्रोव ने गैस बैटरी के साथ एक प्रयोग किया जोकि संचायक का अग्रदूत था।

(पृष्ठ 43 पर)

रोग फैलाने वाले कुछ कीट

डा. ए. के. चौपड़ा
रीडर, जन्तु विज्ञान विभाग
गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार - 249404

कई रोग घर में पाये जानेवाले कीटों के द्वारा ही हमारे शरीर में फैलते हैं। यदि हम सावधानीपूर्वक अपने घर और आसपास स्वच्छता रखें, तो कई जानलेवा रोगों का प्रकोप कम किया जासकता है। प्रस्तुत लेख में सामान्य कीटों द्वारा फैलाये जानेवाले कुछ रोगों की चर्चा की गयी है।

प्राणी जगत में कीटों की अपनी ही महत्ता है। विश्व में पाये जाने वाले प्राणियों में लगभग 70% जातियां कीटों की हैं जिनकी संख्या लगभग 7,50,000 है जो कि जन्तुओं की अन्य जातियों की संख्या से कहीं अधिक है। हमारे दैनिक जीवन में लाभदायक होने के साथ-साथ ये कीट हानिकारक भी है। इनमें से कुछ कीट ऐसे हैं जो रोग फैलाने वाले कीटाणुओं को एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में संक्रमित करके उन्हें रोगग्रस्त कर देते है। गर्म देशों, जैसे भारत आदि में कीटों द्वारा ऐसे रोगों की संभावना ठंडे देशों की अपेक्षा बहुत अधिक है। इन रोगों में पीत ज्वर, डेग्यूं ज्वर, मलेरिया, इन्सिफेलाइटिस, हाथीपांव, काला अजार, निद्रा रोग, प्लेग, हैजा, आंव तथा टाइफस आदि मुख्य है।

पीत ज्वर एक विशेष प्रकार के मच्छर **एडीज एजिप्टियाई** के माध्यम से फैलने वाले विषाणु के कारण होता है। यह मुख्यतः ऊष्ण कटिबन्धीय अफ्रीका, मध्य एवं दक्षिणी अमरीका में पाया जाता है। इस रोग के विषाणु मनुष्य के वृक्क, यकृत और मस्तिष्क को प्रभावित करते है। इसके मुख्य लक्षण बुखार, दर्द, उल्टी के साथ नाक तथा आंखों से रक्त बहना है। इसके फलस्वरूप, मनुष्य पीलिया से पीड़ित हो जाता है। इसका इतिहास बहुत ही दर्दनाक है। इस रोग पर शोध कर रहे कई प्रसिद्ध वैज्ञानिक मृत्यु के शिकार हो चुके है। सन्तोष का विषय है कि यह रोग अभी तक भारत में नहीं पहुंच पाया है।

डेग्यूं ज्वर का कारण भी एक विशेष प्रकार के विषाणु हैं जो **एडीज एजिप्टियाई** मच्छर के माध्यम से एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में पहुँचते हैं। वर्ष 1920 से यह ज्वर आस्ट्रेलिया, ग्रीस, जापान एवं अमरीका के पांच लाख से बीस लाख तक मनुष्यों को प्रभावित कर चुका है। भारत में इस रोग का विराट रूप एशिएड 1982 से पहले देखने को मिला। इसके प्रभाव से रोगी हताश एवं अक्षम हो जाता है। तीव्र ज्वर के साथ-साथ जोड़ों में अत्यधिक पीड़ा होती है। बच्चों में यह रोग जानलेवा भी हो सकता है।

मलेरिया रोग से कौन परिचित नहीं है। परन्तु यह अभी भी मानव मात्र के लिए एक समस्या बना हुआ है। यह रोग प्रोटोजोआ वर्ग के एक-कोशिकीय प्लाज्मोडियम के कारण होता है जिसकी चार प्रजातियां - **प्लाज्मोडियम वाईवेक्स, प्ला. फैल्सी पेरम, प्ला. मलेरिए** एवं **प्ला. ओवेल** मनुष्य में पायी जाती है। इनका संक्रमण मच्छर की एनाफिलीज प्रजाति के काटने से होता है। भारत में एनाफिलीज की 50 जातियां हैं जिनमें से दस जातियां ऐसी है जो मलेरिया रोग को फैलाने में सहायक होती हैं। इस रोग के मुख्य लक्षण कंपकपी के साथ तेज बुखार, अत्यधिक पसीना तथा रोगी का दुर्बल होना है।

प्ला. फैल्सीपैरम अत्यधिक घातक है। इसका उपचार न होने से एक से तीन दिन के अन्दर ही रोगी की मृत्यु तक हो सकती है। वर्ष 1966 में चालीस हजार लोग मलेरिया से प्रभावित थे। तत्पश्चात वर्ष 1977 में मलेरिया से प्रभावित लोगों की संख्या एक करोड़ हो गयी थी। ऐसी संभावना थी कि आने वाले कुछ वर्षों में मलेरिया बिल्कुल समाप्त हो जाएगा, किन्तु यह पुनः उभरकर लोगों को अत्यधिक प्रभावित किये हुए है। कीटनाशक दवाओं के अधिक प्रयोग से मच्छरों में प्रतिरोधकता उत्पन्न होने के कारण कीटनाशक दवाओं का प्रभाव घटता जा रहा है। मलेरिया परजीवी पर भी दवाओं का प्रभाव क्षीण होता-सा प्रतीत होता है।

इन्सिफेलाइटिस रोग भी **क्यूलेक्स** मच्छर के माध्यम से होता है तथा इसका कारण विशेष प्रकार के विषाणु हैं जो मस्तिष्क को प्रभावित करके उसमें सूजन पैदा कर देते हैं। मुख्यतः, यह रोग अमरीका में पाया जाता है। वर्ष 1955 से यह रोग भारत में भी देखा गया है। इसका कारण जापानी

इन्सिफेलाइटिस वाइरस है। भारत में सर्वप्रथम यह रोग पांडिचेरी तथा बैल्लोर में देखा गया। तत्पश्चात तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश, पश्चिमी बंगाल, कर्नाटक तथा बिहार के क्षेत्रों में देखा गया।

हाथी-पांव रोग एक प्रकार के कृमि **वाचुरेरिया बेन्क्राफटाई** एवं **ब्रुजिया मालायी** के कारण होता है। यह मच्छरों की कुछ जातियों, जैसे कि **क्यूलेक्स फेटिगनस, मनसोनिया इनुलिफेरा** और **म. यूनिफार्मिस** के माध्यम से फैलता है। इस रोग से प्रभावित रोगियों के पांव, जननांग तथा स्तन ग्रन्थियां अत्यधिक फूल जाती हैं, इसीलिए इस रोग को हाथी-पांव के नाम से जाना जाता है। संसार में लगभग 250 मिलियन मनुष्य इस रोग से प्रभावित हैं। भारत में वर्ष 1970 के आंकड़ों के आधार पर 12 मिलियन लोग इस रोग से प्रभावित थे जिनकी संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। यह रोग भारत के दक्षिणी क्षेत्रों, पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार में व्याप्त है।

एक अन्य प्रकार के कीट जिसे **फलीबोटोमस** (सैन्ड फ्लाई) कहते है, काला अजार नामक बीमारी को फैलाता है। इस रोग में त्वचा का रंग पूर्णतः काला पड़ जाता है एवं शरीर की त्वचा रूखी तथा खुरदरी हो जाती है। बाल भंगुर होकर गिरने लगते हैं। इसके अतिरिक्त, त्वचा पर, विशेषकर नाक, गाल एवं होठों पर पानी भरे फफोले-से पड़ जाते हैं। इस रोग का कारण सैंड फ्लाई द्वारा संक्रमित एक कोशिकीय लिशमानिया परजीवी की विभिन्न जातियां, **लिशमानिया ट्रोपिका, लि. डोनोबोनाई, लि. ब्रैजीलैसिस** हैं। प्रायः यह रोग भारत, चीन, रूस, अफ्रीका तथा दक्षिणी अमरीका में होता है। भारत में यह मुख्यतः आसाम, बंगाल, उड़ीसा, तमिलनाडु, एवं पूर्वी उत्तर प्रदेश में होता है।

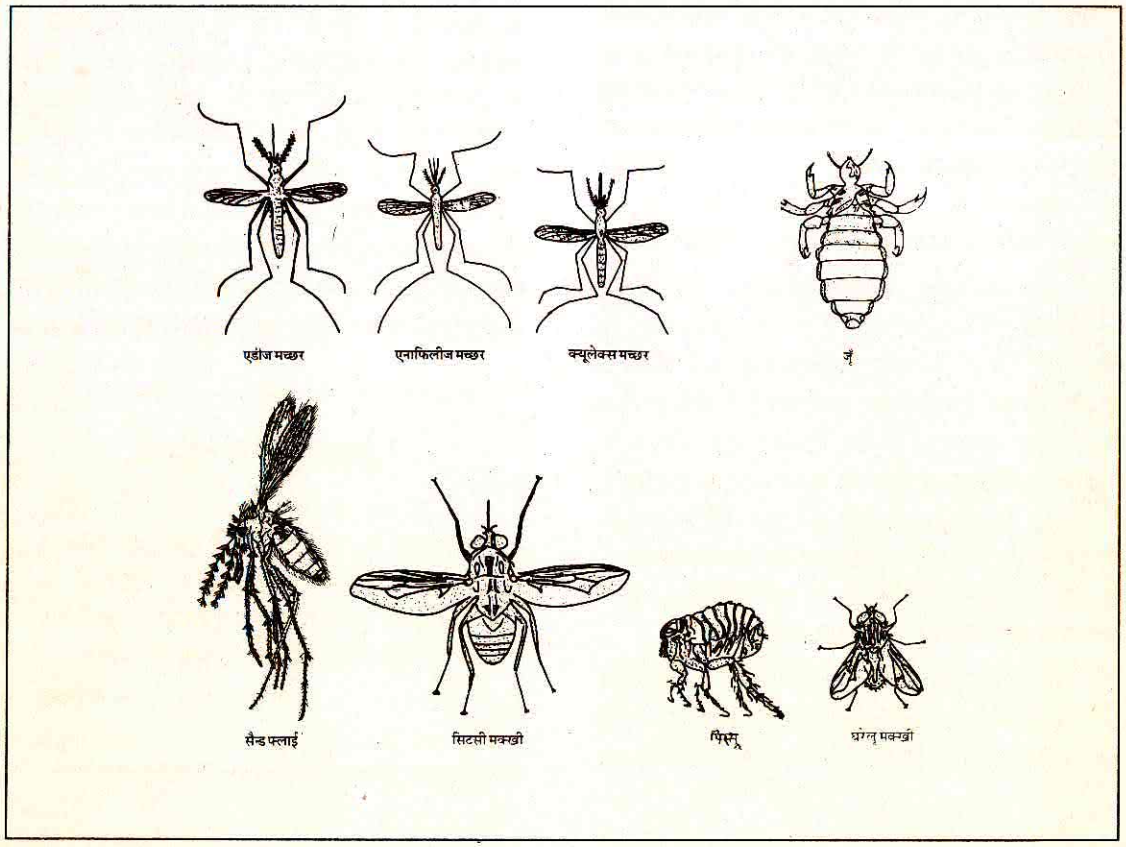

निद्रा रोग का कारण **ट्रिपेनोसोमा रोडिसियन्स** एवं **ट्रि. गैम्बियन्स** नामक प्रोटोजोआ परजीवी हैं, जो कि सिटसी फ्लाई **(ग्लोसिना पैलपेलिस)** द्वारा एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में संक्रमित होता है। यह परजीवी मस्तिष्क को प्रभावित करता है। इस रोग में अत्यधिक नींद आती है, तेज सर-दर्द, बुखार आदि आता है और रोगी की अत्यन्त दुर्बलता के फलस्वरूप मृत्यु हो जाती है। यह रोग केवल अफ्रीका तक ही सीमित है।

जीनोपिसला क्यूपिस जिसे पिस्सू के नाम से जाना जाता है, मनुष्य को काटकर अपने वजन से कहीं अधिक रक्त तो ग्रहण करता ही है, साथ-साथ प्लेग जैसी महामारी के छड़नुमा जीवाणुओं **(पाश्चुरिला पैसिस)** को मनुष्य में छोड़ देता है। इस रोग में पिस्सू के काटने के स्थान पर गाठें बन जाती हैं और जीवाणु भारी संख्या में शरीर के रक्त में प्रवेश कर जाते हैं। इसके कारण रोगी मानसिक और शारीरिक रूप से तनाव ग्रस्त हो जाता है। अचानक ही सर में चक्कर आने शुरू हो जाते हैं। साथ ही, तेज ज्वर और पसीना आने लगता है। शरीर के किसी भी भाग से रक्त स्राव शुरू हो जाता है। वर्ष 1347 तथा 1350 में लगभग 60 मिलियन लोग इस रोग के कारण मृत्यु का शिकार हुए। वर्ष 1895 में यह रोग हांग-कांग से जहाजों द्वारा भारत के बम्बई शहर में आया और 20 वर्षों में 1.3 मिलियन लोग अपनी जान से हाथ धो बैठे, लेकिन वर्ष 1966 के बाद भारत में अभी तक इसका कोई भी मामला नहीं देखा गया है।

घरेलू मक्खियां **(मस्का डोमेस्टिका)** हमें कितना परेशान करती हैं, हम सभी जानते हैं। परन्तु ये अनेक प्रकार के जीवाणुओं एवं प्रोटोजोआ के लिए वाहक का कार्य भी करती हैं और भयंकर बीमारियों का कारण बनती है, जैसे कि हैजा फैलाने वाले जावाणुओं को एक भोजन से दूसरे भोजन तक संक्रमित करती हैं। इस प्रकार का भोजन ग्रहण करने से मनुष्य में हैजा हो जाता है, जिसमें पानी जैसे दस्त और कै लगातार होती रहती है। घबराहट के साथ-साथ अत्यधिक प्यास लगती है, शरीर में जलन होती है तथा दम घुटने लगता है। तुरन्त उपचार न होने पर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

अमीबिक आंव फैलाने में भी घरेलू मक्खियां प्रोटोजोआ वर्ग के **एन्टअमीबा हिस्टोलिटिका** की सिस्ट को एक भोजन से दूसरे भोजन में पहुंचाकर रोग ग्रस्त कर देती हैं। इस रोग में आतों में अल्सर हो जाते है तथा मल के साथ आंव आने लगती है।

इसी प्रकार, शरीर पर पायी जाने वाली जुएं, जैसे कि **पेडिकुलस ह्यूमिनिस**, विशेष कर स्कूल जाने वाली लड़कियों के सिर में खुजली कर अत्यन्त ही परेशान करती हैं। यह भी सिद्ध हो गया है कि टाईफस ज्वर (टाइफाइड नहीं) का कारण भी ये जुएं हैं। इस रोग को फैलाने वाले कीटाणु, **रिकेटारिया प्रोवाजीकाई** इस जूं के काटने से एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में फैलने लगते हैं। इस रोग में ज्वर के कुछ दिन पश्चात खुजली होती है और रोगी अनिश्चय की स्थिति में हो जाता है। छोटी-छोटी रक्त वाहिनियां क्षतिग्रस्त होने लगती हैं, जिससे त्वचा के अन्दर रक्त स्राव होने लगता है। मस्तिष्क, हृदय, और वृक्क भी प्रभावित होते हैं। इससे 10% से 40% रोगियों की मृत्यु हो जाती है।

इस प्रकार, विभिन्न प्रकार के रोगों को फैलाने में कीटों का महत्वपूर्ण योगदान है। स्वास्थ्य के लिए इन कीटों की रोकथाम नितान्त आवश्यक है। मनुष्य केवल अस्थाई रूप से ही इनकी रोकथाम कर पाता है। मनुष्य और कीटों में चिरस्थायी युद्ध जारी है। एक तरफ कीटों को नष्ट करने के लिए मनुष्य शोध कार्य कर विभिन्न प्रकार के रासायनिक पदार्थों, दवाओं और अन्य विधियों का आविष्कार करता है, दूसरी तरफ कीट अपनी क्षमता शक्ति बढ़ा कर जीवित रहने का उपाय निकाल ही लेते हैं। आने वाला समय ही बता पायेगा कि अंत में कौन किस पर विजय प्राप्त करने में सफल होगा। ● ● ●

"वैज्ञानिक" का शुल्क

पाठकों से अनुरोध है कि यदि उनका "वैज्ञानिक" का शुल्क समाप्त हो गया हो, तो उसे भेज कर इसका नवीनीकरण करा लें। "वैज्ञानिक" के लिफाफे पर शुल्क सम्बन्धी जानकारी दी जाती है। यदि सम्भव हो तो आजीवन सदस्य बन जाएँ।

— संपादक

वायु में पहली उड़ान - 'मांगल्फिये भाई'

पूनम वार्ष्णेय
द्वारा : डा. वाई. पी. वार्ष्णेय
भौतिक विज्ञान विभाग, ओटावा विश्वविद्यालय
ओटावा, कनाडा KIN 6N5

विचार और कल्पनाशील मनुष्य आकाश में उड़ते परिन्दों को बड़े कौतूहल से देखता रहा है। आकाश में उन्मुक्त विहार कर सकने की कल्पना उसे हमेशा रोमांचित करती रही। काश! वह भी उड़ सकता गगन विशाल में, सदियों से यह आकांक्षा उसके मन में पलती रही। अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में फ्रान्स के मांगल्फिये बंधुओं ने इस दिशा में ठोस कदम उठाया और गर्म हवा के गुब्बारों को हवा में उड़ाने का सफल प्रयास किया। उस समय के वैज्ञानिक विकास की दृष्टि से अवश्य ही यह एक ऐतिहासिक कार्य था। उस प्राथमिक प्रयास से चलकर जेट वायुयान और राकेट तकनीकी से होते हुए मानव अंतरिक्ष तक पहुंच गया है। परंतु इस विशाल उपलब्धि की शुरुआत उन्हीं पहले लड़खड़ाते कदमों को मानना होगा जो मांगल्फिये बंधुओं ने उठाये थे।

मनुष्य ने पहली सफल वायुमण्डलीय उड़ान वर्ष 1783 में की थीं। इस उड़ान की सफलता का श्रेय फ्रांस के दो भाइयों, जोज़ेफ और ऐतीन मांगल्फिये को मिलता है।

मांगल्फिये भाई, पियर मांगल्फिये के सोलह बच्चों में से दो थे। इनका पिता लियों और एने डूरेट के दक्षिण में एनोने के समीप कागज उद्योग में लगा था। वैसे, मूल रूप से मांगल्फिये खानदान फ्रेंनकेनथेल, जर्मनी का रहने वाला था और तेरहवीं शताब्दी में फ्रांस में आकर उसने कागज उद्योग स्थापित किया था। वर्ष 1695 में मांगल्फिये परिवार दक्षिणी फ्रांस के एक छोटे-से कस्बे, विडलोन में अपना कागज उद्योग ले आया।

जोज़ेफ मिशेल मांगल्फिये का जन्म 26 अगस्त 1740 को एनोने, फ्रान्स में हुआ था। बहुत कम आयु में ही उसने अपनी योग्यता का परिचय पर्शियन ब्लू रंग को बनाने की नयी तकनीक बताकर दे दिया था।

बड़े होकर जोज़ेफ एक कुशल और कल्पना को साकार रूप देने वाले तकनीशियन बने। स्वाध्याय से ही उन्होंने विज्ञान व गणित की शिक्षा प्राप्त की थी। हालांकि विज्ञान व गणित की औपचारिक शिक्षा का अभाव उन्हें खटकता था, लेकिन फिर भी एक बार उन्होंने भाप से चलने वाली गाड़ी बनाने का भी प्रयास किया था।

वे अपने पिता को कागज उद्योग के कार्यों में सहयोग दिया करते थे। उनकी कुशाग्र बुद्धि देखकर वर्ष 1770 में उनके पिता ने रीस ब्रॉंच का कार्यभार उन्हें सौंप दिया। यहाँ आकर जोज़ेफ ने कागज बनाने में नये सुधार किये। उन्होंने एक विशेष प्रकार के वायु-पम्प का आविष्कार किया जो सांचे से कागज हटाने के काम आता था। इसके अतिरिक्त, उन्होंने एक निर्वात आसवन उपकरण भी बनाया।

वर्ष 1771 में उनका विवाह थेरेस फ़िहोल के साथ सम्पन्न हुआ। व्यावसायिक बुद्धि की धनी होने के कारण थेरेस, जोज़ेफ की अच्छी सहयोगिनी साबित हुई। युवा अवस्था में जोज़ेफ ने पर्यटक के रूप में कई यात्राएं कीं।

जॉक ऐतीन मांगल्फ़िये का जन्म 6 जनवरी 1745 को हुआ था। उसने पेरिस में भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र व वास्तुविज्ञान की शिक्षा प्राप्त की थी। वहीं कुछ समय चर्चों तथा फैक्टरियों को बनाने में एक सहायक के रूप में ऐतीन ने कार्य किया। फिर एक प्रसिद्ध वॉल पेपर फर्म ने ऐतीन को अपनी फर्म में नौकरी दे दी। यद्यपि ऐतीन अपने बड़े भाई, जोज़ेफ का बहुत आदर करता था, लेकिन अपने भाई से स्वभाव में वह बहुत भिन्न था। वह आकर्षक, मधुर स्वभाव का और मिलनसार था। उस समय के विद्वान वर्ग के लोगों से उसकी मित्रता थी।

वर्ष 1772 में ऐतीन के पिता ने उसे विडलोन के कागज उद्योग को संभालने के लिए बुलाया। यहाँ आकर ऐतीन ने कागज के गूदे को कुचलने की नवीन विधि बतायी तथा वैलम पेपर व ड्राइंग पेपर का उत्पादन शुरू किया।

यह ज्ञात नहीं है कि किस घटना या विचार ने मांगल्फिये भाइयों की रुचि वायुमण्डलीय उड़ानों में शुरू की, लेकिन प्रारम्भ में जोज़ेफ ने प्रयोग शुरू किये और शीघ्र ही उनका छोटा भाई, ऐतीन भी इन प्रयोगों में सहयोग देने लगा, जिसके परिणामस्वरूप गर्म हवा वाले गुब्बारे बने। कभी-कभी दोनों भाइयों ने साथ-साथ प्रयोग किये पर कभी अकेले भी कार्य किया। दोनों भाइयों ने इस उद्देश्य से कई प्रयोग किये कि वायु में भारी वस्तुएं कैसे उठी रह सकती हैं। ज्वलनशील गैस जिसे वर्ष 1789 में लेवोज़िये ने 'हाइड्रोजन' कहा, वायु से हलकी होती है। इस गैस की जानकारी होने पर उन्होंने पाया कि ज्वलनशील गैस को कागज अथवा कपड़े के थैले में भरकर थैले को आसानी से फुलाया जा सकता है। लेकिन अभी भी कुछ समस्याएं थीं - कपड़े के थैले के सूक्ष्म छिद्रों से हाइड्रोजन गैस निकलने पर वे कोई रोक नहीं कर पाते थे। इसके अतिरिक्त, यह गैस बहुत खर्चीली तथा लाने-लेजाने में असुविधाजनक थी। उस समय यह कोई नहीं जानता था कि ज्वलनशील गैस (हाइड्रोजन गैस) का असावधानी पूर्ण प्रयोग कितना खतरनाक हो सकता है। यद्यपि वे यह नहीं जानते थे कि गर्म वायु फैलती है और फिर घनत्व में हलकी हो जाती है, फिर भी जोज़ेफ ने इस तथ्य का अनुसरण किया कि ज्वलन प्रक्रिया से जो पदार्थ निकलते हैं वे हवा में सामान्य तौर पर ऊपर की ओर उठते हैं। यह नहीं ज्ञात है कि उन्होंने धुएं को कभी एक विशेष प्रकार की गैस माना था अथवा नहीं, लेकिन वर्ष 1782 के नवम्बर में ऐवीनोन शहर में इन्होंने एक छोटे रेशमी थैले के नीचे अग्नि जलाकर, रेशमी थैले को गर्म हवा द्वारा वायु में कुछ ऊपर उठाया। फिर, उन्होंने लगभग 0.1 घन मीटर आयतन के गुब्बारे उड़ाने का प्रदर्शन जनता के समक्ष किया और इसकी सूचना एनोने शहर में अपने छोटे भाई, ऐतीन को दी। आगे के महीनों में दोनों भाइयों ने मिलकर बड़ी आकृति के कुछ रेशमी गुब्बारे, गर्म वायु भर कर सफलतापूर्वक उड़ाए।

5 जून 1783 को दोनों भाइयों ने एनोने के स्थानीय सरकारी अधिकारियों के समक्ष लिनेन व कागज से बना एक गुब्बारा उड़ाया। इस गुब्बारे का व्यास फुलाने पर नौ मीटर था तथा उसका पेंदा खुला हुआ था, जिसके द्वारा गर्म वायु उसमें भरती थी। यह गुब्बारा लगभग 2,000 मीटर की ऊँचाई तक उठा और 10 मिनट तक वायु में रहा। इस सफल प्रदर्शन की एक आधिकारिक सूचना पेरिस के एकेडमी ऑफ साइन्सेज को भेजी गयी। वहाँ से तुरन्त एक विशेष प्रदर्शन के लिए मांगल्फिये भाइयों को आमंत्रण भेजा गया।

उन्हीं दिनों जॉक अलेक्जोन्डरे चार्ल्स ने एक दूसरी तरह का गुब्बारा बनाया जिसमें हाइड्रोजन भरी जा सकती थी। चार्ल्स ने रेशम का गुब्बारा बनाकर उस पर वार्निश कर दी। इस तरह से, कपड़े के सब छिद्र बन्द हो गये और वह समस्या हल हो गयी जिससे मांगल्फ़िये भाई परेशान थे। ऐतीन ने चार्ल्स को 27 अगस्त 1783 को पहला हाइड्रोजन भरा गुब्बारा उड़ाने में सहायता दी।

12 सितम्बर 1783 को ऐतीन ने एकेडमी ऑफ साइन्सेज के लिए स्वयं अपना गर्म वायु का गुब्बारा उड़ाने का प्रयास किया, लेकिन यह गुब्बारा वर्षा व वायु के वेग के कारण जमीन पर ही नष्ट हो गया। शीघ्र ही उसने फिर एक नया गुब्बारा विशेष प्रकार के लिनेन की सहायता से बनाया। फिर, 19 सितम्बर 1783 को वर्साई के महल के आँगन में एकेडमी के अधिकारियों तथा अन्य विद्वतगणों के समक्ष जिसमें बेंजामिन फ्रेंकलिन भी थे, लगभग 57 फीट की ऊँचाई तक एक गुब्बारे को उड़ाया। उस गुब्बारे के साथ एक हलकी टोकरी भी बँधी थी जिसमें एक भेड़, एक मुर्गा और एक बत्तख थी। यह गुब्बारा 8 मिनट तक आकाश में तैरा और उसके बाद वहाँ से 2 मील की दूरी पर सुरक्षित उतर गया। ये प्रारम्भिक गुब्बारे वायु में केवल थोड़ी देर तक ही टिक पाते थे क्योंकि इनमें भरी गर्म वायु जल्दी ही निकल जाती थी।

ऐतीन ने तब एक बड़ा गुब्बारा बनाया जो मानव यात्रियों को ले जा सके। यह गुब्बारा अण्डे के आकार का था, और भरा होने पर इसका आयतन 2,300 घन मीटर था। गुब्बारे की गर्दन से एक बड़ी टोकरी (जिसका व्यास 5 मीटर था) लटकी हुई थी, जिसमें यात्री, अँगीठी (गर्म हवा बनाने के लिए), तथा ईंधन रखा जा सकता था।

12 अक्टूबर 1783 से ऐतीन ने इस गुब्बारे का कई बार परीक्षण किया। 15 अक्टूबर को उसने एक भौतिकविज्ञानी, जाँ रोज़ियर को इस गुब्बारे में बैठाकर उड़ाया। गुब्बारा लगभग 25 मीटर ऊपर उठा। फिर, 19 अक्टूबर को रोज़ियर तथा एक अन्य व्यक्ति इस गुब्बारे में 99 मीटर की ऊँचाई तक उड़े। इन परीक्षणों में गुब्बारा रस्सियों द्वारा खूँटों से बँधा रहता था।

21 नवम्बर 1783 को मानव ने गुब्बारे से प्रथम बार बिल्कुल स्वतन्त्र रूप में आकाश में सफल उड़ान भरी। उस दिन पेरिस से ऐतीन के गुब्बारे में रोज़ियर तथा फ्रान्सवा लौरें उड़े। लगभग 25 मिनट तक यह गुब्बारा उड़ता रहा और फिर पेरिस के दक्षिण में कुछ मील दूर उतरा। ऐतीन स्वयं कभी गुब्बारे में नहीं उड़ा।

उधर अक्टूबर, 1783 में जोज़ेफ मांगल्फ़िये इस बात पर विचार कर रहा था कि किस तरह गुब्बारे को निश्चित दिशा में उड़ाया जा सके। तब तक गुब्बारे हवा की दया पर निर्भर करते थे। जिधर हवा ले जाती थी, उधर जाते थे। जोज़ेफ ने सोचा कि अगर गुब्बारे में दिशा-नियंत्रण के लिए एक ओर से गर्म वायु प्रवाहित की जाये तो गुब्बारा उसकी उल्टी दिशा में जायेगा। एक बड़ा गुब्बारा बनाने के लिए जोज़ेफ को लिऑन में आमंत्रित किया गया। इसका व्यास 31 मीटर, ऊँचाई 38 मीटर तथा आयतन 20,000 घन मीटर था। इससे लटकने वाली टोकरी भी बड़ी थी, जिसमें 6 व्यक्ति, ईंधन, पानी भरी बाल्टियाँ तथा अँगीठी आ सकती थीं। परीक्षणों के बाद 19 जनवरी 1784 को जोज़ेफ मांगल्फ़िये, रोज़ियर तथा पाँच अन्य संभ्रान्त व्यक्ति इस गुब्बारे में उड़े। गुब्बारा 16 मिनट तक उड़ता रहा पर उसके बाद अचानक उसमें एक छिद्र हो जाने के कारण गर्म हवा तेजी से निकलने लगी और गुब्बारा जल्दी ही जमीन पर गिर गया। इससे जोज़ेफ को कुछ चोट आयी। जोज़ेफ ने अपने जीवन काल में केवल यही एक उड़ान भरी थी।

मांगल्फ़िये भाइयों के गुब्बारों की उड़ान के सफल प्रदर्शन ने शीघ्र ही यूरोप में सब का ध्यान आकर्षित कर लिया और भाइयों को राष्ट्रीय ख्याति भी मिली। जोज़ेफ, एकेडमी ऑफ साइन्सेज के सदस्य नामांकित किये गये और 1783 के दिसम्बर में ऐतीन, नेशनल इंस्टीट्यूट के करेसपान्डिंग मेम्बर बना लिये गये। राजा लुइस सोलहवें ने इनके पिता को 'पियरेज' नामक खिताब दिया और यह सम्मान वंशानुगत होने के कारण आगे भी प्रयोग किया गया। फ्रान्स की क्रान्ति के दौरान जोज़ेफ ने बहुत से लोगों का जीवन बचाया। ऐतीन एक प्रान्त के एक भाग का शासक बना दिया गया था। वहाँ पर उसने भी बहुत से लोगों को प्राणदण्ड से बचाया।

जोज़ेफ अपने जीवनकाल में कभी एक बहुत सफल व्यापारी तो नहीं रहे लेकिन सन्तुष्ट थे। फ्रान्स की क्रान्ति के बाद उन्होंने कागज उद्योग से अवकाश ग्रहण कर लिया और

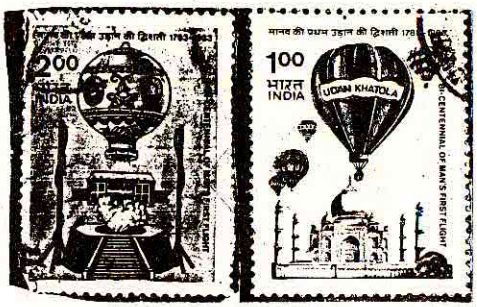

पेरिस चले गये। वर्ष 1801 में उनके पास पेरिस सन्देश भेजा गया कि कन्जरवेटायर दे आर्ट्स ए मेटियर्स (Conservatoire des Arts et Metiers) को संगठित करने में सहयोग दें। बाद में वे इस में शिक्षक और संचालक हो गये। 1807 में वे इंस्टिट्यूट दे फ्रांस (Institute des France) के लिए निर्वाचित किये गये।

वैसे तो जोज़ेफ ने अपने जीवन में कई आविष्कार किये थे, परन्तु उनमें सबसे महत्वपूर्ण उनकी वर्ष 1792 की खोज, हाइड्रालिक रेम (Hydraulic ram) कही जाती है। यह एक विशेष प्रकार का यंत्र होता है जिससे बहते हुए पानी को ऊपर के स्तर पर चढ़ाया जा सकता है।

ऐतीन का देहान्त 2 अगस्त 1799 को लियों से एनोने अपने घर जाते समय हुआ। जोज़ेफ उसके कई वर्ष बाद तक जीवित रहे। उनका निधन मस्तिष्क के रक्तस्राव के कारण 26 जून 1810 को बालारक-ले-बें में हुआ।

मानव की प्रथम उड़ान की द्वितीय शताब्दी के अवसर पर भारत में 21 नवम्बर 1983 को दो डाक टिकट जारी किये गये थे।

मांगल्फ़िये भाइयों के गुब्बारों के उड़ाने के इन प्रयोगों ने मानव के हवा में उड़ने की इच्छा के सम्बन्ध में पहला ठोस कदम रखा और आगे खोज के लिए प्रेरित किया। बाद में, वैज्ञानिकों की काफी मेहनत एवं खोज के बाद मनुष्य की हवाई उड़ान की इच्छा पूरी भी हुई। • • •

विज्ञान कथा

तेल-भक्षी जीवाणु

राजकुमार जैन
वैज्ञानिक, डी.आर.डी.ओ.
बँगलोर - 560 093

गत वर्षों में तेलवाही जहाजों से बड़े पैमाने पर समुद्र में तेल के फैल जाने से प्रदूषण की अनेक घटनाएं हुई हैं। अलास्का में अमरीका के जहाज से फैले तेल से इतना व्यापक प्रदूषण हुआ था कि उसे संभालने और साफ करने में करोड़ों डालर खर्च करने पड़े। कुछ वर्ष पहले भारतीय पश्चिमी तट को भी तेल के प्रदूषण से खतरा पैदा हो गया था। अन्य नष्ट हो जाने वाले पदार्थों की तरह तेल को भी आवश्यकता पड़ने पर सुरक्षित तरीके से नष्ट करने की संभावना पर वैज्ञानिक विचार होता रहा है। इस विज्ञान कथा में तेल-भक्षण कर सकने वाले जीवाणुओं की कल्पना की गयी है। कई वर्ष पहले अमरीका स्थित एक भारतीय वैज्ञानिक ने इस दिशा में कुछ अनुसंधान प्रस्तुत किया था। विचारणीय है कि ऐसे जीवाणुओं की खोज एक दोधारी तलवार भी है जो विशाल तेल भंडारों को खतरे में डाल सकती है।

20 जुलाई 1989 की प्रातः ! बम्बई समुद्र तट के पास तेजी से बढ़ती आरही तेल की परत को साफ करने की तैयारियां जोरों से चल रही थीं। तेल की परत जो लगभग बीस दिन पहले एक तेलवाहक जहाज के दुर्घटनाग्रस्त हो जाने के कारण लगभग चार हजार टन तेल के समुद्र पर बिखर जाने से उत्पन्न हुई थी, तेजी से बम्बई तट की तरफ बढ़ रही थी। प्रदूषण की बड़ी घटनाओं में से यह एक बड़ी दुर्घटना थी और इस क्षेत्र में समुद्री जीवों का जीवन असुरक्षित हो गया था। तेलीय परत मानसूनी हवाओं के सहारे तेजी से बम्बई तट की तरफ बढ़ रही थी।

तेलीय परत की प्रगति पर निगाह रखने के लिए भारतीय तट रक्षक, जल सेना के हेलीकाप्टर और वायुयान लगातार उड़ानें भर रहे थे। अंतरिक्ष में स्थित उपग्रह द्वारा प्राप्त चित्रों से भी उसकी प्रगति पर निगाह रखी जा रही थी। योजना यह थी कि बम्बई तट से 100 किमी. की दूरी पर ही उसे रोक दिया जाए। तट रक्षक और जल सेना को इस कार्य के लिए तैयार किया जा रहा था। अन्य देशों से भी तेल नष्ट करने की विधियों के बारे में विचार विमर्श किया जा रहा था।

जब ये तैयारियां जोरों से चल रही थीं, तभी एक हेलीकाप्टर चालक ने एक अनहोनी अजीब सी घटना का जिक्र किया। वह तेल से प्रभावित क्षेत्र पर प्रायः प्रतिदिन ही अनेक बार उड़ान भर चुका था। अपनी अंतिम तीन उड़ानों के दौरान उसने परत की प्रगति में कुछ विशेषता पायी थी। परत के बम्बई तट की तरफ वाले किनारे के प्रायः बीचोंबीच एक तेल-विहीन क्षेत्र बन रहा था। ऐसा लगता था कि तेलीय परत की प्रगति उस स्थान पर रुक गयी है जबकि बाकी परत अपनी प्रगति बनाये हुए है।

इस चालक ने जो कुछ देखा था उसकी पुष्टि अन्य चालकों ने भी की, किन्तु इस महत्वपूर्ण जानकारी को किसी ने भी गंभीरतापूर्वक नहीं लिया। यह मान लिया गया कि किसी स्थानीय बाधा के कारण तेलीय परत उस स्थान पर दो भागों में बट रही है और जल्द ही वह पुनः जुड़कर अपनी प्रगति बनाये रखेगी।

अगले दिन जब लिये गये तेल क्षेत्रीय चित्रों का विश्लेषण किया गया तो यह बात स्पष्ट हो गयी कि जो कुछ पिछले दिनों देखा गया है, वह सही है। तेल विहीन क्षेत्र में इस बीच इतनी वृद्धि हुई थी कि वह अब लिये गये चित्रों में मात्र स्पष्ट ही नहीं उभर कर आया था, किन्तु अपनी लगातार वृद्धि को भी दर्शा रहा था।

इस नयी जानकारी से एक नया वादविवाद उठ खड़ा हुआ। एक दल का मत था कि चलो अच्छा हुआ। परत की प्रगति रुक गयी है और अब हमें परेशान होने की आवश्यकता नहीं है। दूसरे दल का मत था कि यह जाने बिना कि वह कौन सी शक्ति है जिसने यह तेल-विहीन क्षेत्र निर्मित किया है हमें शांतिपूर्वक नहीं बैठना चाहिए। उन्हें डर था कि किसी बाह्य

शक्ति ने भारतीय सीमा के निकट अनावश्यक हस्तक्षेप किया है।

22 जुलाई को लिये गये चित्रों ने जब स्पष्ट एक बहुत बड़े क्षेत्र को तेलविहीन दिखलाया और यह स्पष्ट हो गया कि यह एक मात्र संयोग नहीं है बल्कि वास्तविकता है, तो सभी बढ़ते तेल की परत की बात को छोड़, बढ़ते तेलविहीन क्षेत्र की बात करने में जुट गये। इतना स्पष्ट हो चुका था कि अब यह परत संभवतः बम्बई तट पर या उसके निकट नहीं पहुंच पायेगी वशर्ते कि प्रगति ऐसी ही बनी रहे।

23 जुलाई को प्राप्त सूचनाओं में जब यह बात स्पष्ट हो गयी कि आधे से कहीं ज्यादा तेल की परत समाप्त हो चुकी है तो एक नये प्रकार की खलबली सभी क्षेत्रों में फैल गयी। वह कौन-सी शक्ति है जो इतनी तेजी से इस तेल को समाप्त कर सकती है। वैज्ञानिकों का एक विशेष दल उस स्थान से पानी के नमूने प्राप्त करने और उसकी जांच करने के लिए भेजा गया। नमूने प्राप्त होते ही जैव विकास प्रयोगशालाएं उन नमूनों की जांच परख करने में जुट गयीं।

24 जुलाई की प्रातः तक यह स्पष्ट हो चुका था कि तेल की परत के कारण जो प्रदूषण का खतरा बम्बई तट को था, वह समाप्त हो चुका है। परत की प्रगति भले ही न रुकी हो किन्तु उसकी मात्रा काफी कम हो चुकी थी और उसके भी एकाध दिन में समाप्त हो जाने की आशा थी। इसके बाद यह दैनिक समाचार पत्रों में मामूली चर्चा का विषय रह गया था, "तेलीय परत कहां गयी ?"

तेलीय परत के गायब हो जाने से सबसे ज्यादा चिंता थी तो वैज्ञानिकों को, जो उस स्थान से प्राप्त पानी के विश्लेषण में जुटे थे। उस जल के नमूनों में उन्हें एक नये प्रकार के जीवाणु नजर आरहे थे। इन जीवाणुओं के बारे में वे अभी तक पूर्णतया अनभिज्ञ थे। जल से प्राप्त नमूने के एक भाग में जब और तेल डाला गया तो उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। प्रायः मरे हुए से जीवाणु, तेजीसे सक्रिय हो गये और देखते-देखते ही तेल गायब हो गया। नमूने में जीवाणुओं की संख्या भी तेजी से बढ़ी थी और परखनली के द्रव के आयतन में बहुत मामूली-सा परिवर्तन आया था। ऐसा लगता था कि ये जीवाणु तेलीय पदार्थों को तेल-विहीन बना देते हैं, किन्तु इस प्रक्रिया में तेलीय आयतन में, एक दूसरे प्रकार के पदार्थ की उत्पत्ति के कारण कोई परिवर्तन नहीं होता।

जब इस प्रकार के प्रयोग की पुष्टि प्रायः सभी वैज्ञानिकों ने अपने-अपने परीक्षणों में की, तो एक नये खतरे की संभावना से वैज्ञानिक क्षेत्र में खलबली मच गयी। तुरंत इस नयी मुसीबत पर विचार के लिए एक विशेष आपात्कालीन बैठक बुलायी गयी।

25 जुलाई को तेलीय परत के बिल्कुल समाप्त हो जाने की पुष्टि सभी प्रकार से हो गयी। उसी शाम भारत सरकार के वैज्ञानिक सलाहकार की अध्यक्षता में जीव वैज्ञानिकों की एक आपात्कालीन बैठक चल रही थी। आनेवाले खतरे की भीषणता का अंदाज भी कठिन प्रतीत हो रहा था। ऐसा लगता था कि यदि ये जीवाणु तेल प्रतिष्ठानों में प्रवेश कर जाते हैं तो समुद्री तेल उत्पादन के साथ-साथ सभी तेलीय पदार्थों के नष्ट हो जाने की संभावना है।

वैज्ञानिक सलाहकार की सलाह पर पुनः समुद्र के उस स्थान से पानी का नमूना प्राप्त किया गया। इस नमूनें में भी इन जीवाणुओं की उपस्थिति की पुष्टि होने पर, सर्वप्रथम समुद्र में तेल निकाल रहे, सभी तेल स्टेशनों को गुप्त संदेश भेजकर आनेवाले खतरे की चेतावनी दी गयी। वैज्ञानिकों से कहा गया कि वे जल्द से जल्द उपाय खोज निकालें कि इन जीवाणुओं को समय रहते नष्ट किया जा सके। वैज्ञानिक अपने कार्यों में जुट गये और वैज्ञानिक सलाहकार उच्च विचार विमर्श के लिए दिल्ली रवाना हो गये। प्रयत्न यह किया गया था कि इस अनोखी जानकारी को पूर्णतया गुप्त रखा जाए और आनेवाली विपत्ति की भनक भी किसी को न मिले।

प्रधानमंत्री तक जब यह समाचार पहुंचाया गया तो उन्हें एकदम से उसपर विश्वास नहीं हुआ। वैज्ञानिक सलाहकार को इस बात की आशंका पहले से ही थी, इसी कारण वे पूर्ण तैयारी करके आये थे। वैज्ञानिकों की रिपोर्टों के अलावा उनके पास पानी का नमूना भी था। प्रधानमंत्री की उपस्थिति में जब परखनली में काला गाढ़ा तेल डाला गया तो उसमें हलचल मच गयी। कुछ ही मिनटों के अंदर परखनली में स्वच्छ, साफ द्रव पुनः दिखलायी पड़ने लगा। प्रधानमंत्री की सलाह पर विश्व के प्रमुख जीव वैज्ञानिकों को गुप्त संदेश भेजकर बम्बई बुलाया गया।

इस बीच वैज्ञानिक अपने प्रयोगों में जुटे थे। उन्हें विश्वास था की समस्या का समुचित हल निकाल लिया जाएगा। तेल-भक्षी जीवाणुओं के जीवन, उत्पत्ति, बढ़ोत्तरी, को समझने और उन्हें नष्ट करने के उपाय सोचे जारहे थे। इस दिशा में वैज्ञानिक अपनी प्रगति से संतुष्ट थे। भारतीय वैज्ञानिकों को विश्व के श्रेष्ठ जीव वैज्ञानिकों का सहयोग इस कार्य में मिल रहा था। फिर भी समय तेजी से गुजर रहा था।

तभी बम्बई तट पर एक छोटी-सी घटना ने सभी का ध्यान अपनी तरफ आकर्षित कर लिया। एक तेलवाहक जहाज से जब तेल उतारा जारहा था तो उससे प्राप्त तेल का नमूना बहुत ही घटिया किस्म का पाया गया। तेलवाहक जहाज के कप्तान को फौरन हिरासत में ले लिया गया। जांच करने पर पता चला कि जो तेल जहाज पर लादा गया था उसकी किस्म और उतारे जारहे तेल की किस्म में भारी अंतर था। जांच समिति को आशंका हुई कि रास्ते में जहाज से तेल निकालकर घटिया किस्म का तेल भरा गया है। जहाज के कप्तान ने इस संभावना से इंकार किया। किन्तु किसी को भी कप्तान की बात पर विश्वास नहीं हो रहा था।

इस छोटे से समाचार के मिलते ही जीवाणु की खोजपर कार्य कर रहे वैज्ञानिकों ने उस तेल के नमूने को प्राप्त किया और उन्हें कोई आश्चर्य नहीं हुआ जब उसमें भी उन्हें तेल-भक्षी जीवाणुओं की उपस्थिति का पता चला। उन्हें विश्वास हो गया कि तेलवाहक जहाज का कप्तान निर्दोष है और यह संदेश गुप्त रास्ते से पुलिस तक पहुंचा दिया गया।

इस बीच जीवाणुओं पर हो रहा अध्ययन रंग लाया। उन्होंने पाया कि जीवाणु पेट्रोलियम, तेलीय पदार्थों की उपस्थिति के बिना कुछ दिनों से ज्यादा जीवन नहीं जी सकते। उन्होंने एक ऐसा द्रव भी खोज निकाला जिसकी एक बूंद भी तेल में मिलाने पर वे निष्क्रिय हो जाते हैं। सफलता मिलते ही खतरे वाले स्थानों पर जीवाणुओं को नष्ट करने की योजना पर विचार प्रारंभ कर दिया गया। सबसे ज्यादा खतरे वाले स्थानों पर नमूने लेकर उनकी जांच की गयी और आशंका होने पर एक बूंद तेल-भरी प्रतिरोधी दवा उनमें मिला दी गयी।

बाद की जांच से ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वैज्ञानिकों की इस खोज की खबर और उनकी योजना का पता स्वयं जीवाणुओं को मिल गया हो, क्योंकि बाद में लिये गये किसी नमूने में जीवाणुओं की उपस्थिति अनेक दिनों तक नहीं पायी गयी। गुप्त समाचार संस्थानों का कहना है कि जब तक तेल-भक्षी जीवाणुओं को नष्ट करने की योजना अमल में लायी जाती, सभी जीवाणु अपनी रक्षा के लिए भूमिगत हो चुके थे। सुना है, वे फिर किसी उचित समय पर आक्रमण करने की तैयारी में जुटे हैं। • • •

(पृष्ठ 43 से आगे)

1843 डॉ मोन्टगोमरी ने गटापारचा - एक प्रकार का गोंद जोकि मलायन पेड़ से निकलता है - को रायल सोसाइटी आफ आर्ट्स में प्रदर्शित किया। इस गोंद को करीब 70 वर्ष तक बिना किसी स्पर्धा के विद्युतरोधी के रुप में समुद्री तारों में इस्तेमाल किया गया।

ब्रिटिश रेलवे कम्पनी ने पहली बार भूमिगत टेलीग्राफ परिपथों का दबाव द्वारा संरक्षण किया।

1844 अमेरिका में वाशिंगटन और बाल्टीमोर के बीच पहली टेलीग्राफ लाइन बिछाई गई।

24 मई को सेमयुल मोर्स ने पहली सार्वजनिक सूचना भेजी।

ग्रेट ब्रिटेन में विम्बलडन और नाइन एल्म्स (10 कि.मी. की दूरी) के बीच एक लाइन बिछाई गई। यह लाइन कापर तार की थी जोकि जमीन में बिछाई गई थी तथा इसको एक पतली डामर की परत द्वारा ढक दिया गया था।

1845 सेमयुल मोर्स ने पहला संदेश वाशिंग्टन से बाल्टीमोर भेजा।

फ्रांस में पहली टैलीग्राफ लाइन पेरिस और रोउन (Rouen) के बीच पूरी की गई।

ब्रिटेन के यंग और मेकनेर ने केबिल के लिए सीसे के आवरण का सुझाव दिया।

गटापारचा कम्पनी गटापारचा की छड़ें तथा ट्यूब्स बनाने के लिए संगठित की गई। *(क्रमशः)*

टिप्पणी

1. गाजर घास : एक जहरीला पौधा

बरसात का मौसम शुरू होते ही गाजर की तरह पत्तोंवाली एक वनस्पति काफी तेजी से बढ़ने और फैलने लगती है। 3-4 फुट तक ऊँची इस वनस्पति को 'गाजर घास' के नाम से जाना जाता है। इसका वानस्पतिक नाम 'पार्थेनियम' है। यह दुनिया के सात सबसे अधिक हानिकारक पौधों में से एक है।

ऐसा माना जाता है कि इस घास के बीज वर्ष 1950 में तथाकथित अमरीकी संकर गेहूँ 'पी.एल-480' के साथ भारत आये। सबसे पहले इसकी झाड़ियां पूना में देखी गयीं, और धीरे-धीरे आज यह लगभग पूरे देश में फैल गयी। कई जगह इसने चारागाहों को पूरी तरह से ढक दिया है और खाली पड़े मैदान के मैदान अपनी चपेट में ले लिये हैं। इस पर छोटे-छोटे सफेद फूल उगते हैं। एक ही पौधे में लगभग 64 करोड़ बीज होते हैं, जो हवा के द्वारा बड़े क्षेत्र में फैल जाते हैं। इन बीजों में स्तरीय तत्व 'पार्थेनिन' नामक एक रसायन पाया जाता है जो मानव के लिए अत्यन्त हानिकरक होता है। इस से आदमी को दमा, खांसी, चर्म रोग, पुरानी खांसी और बुखार जैसी बीमारियां हो सकती हैं।

इस विषैले पौधे के फैलने के कारण केवल आदमी के स्वास्थ्य के लिए ही संकट पैदा नहीं हो गया है, बल्कि पशुओं के चारे की समस्या भी पैदा हो गयी है। गाजर घास "चारा परिवार" की वनस्पति की श्रेणी में नहीं आता है। जानवर न तो इसे खाते हैं और न ही जहां यह उगता है वहां के आस-पास की वनस्पति खाते हैं। इसकी जड़ों से निकलने वाला रसायन "इक्यूडेर" अन्य वनस्पतियों को भी आस-पास नहीं उगते देता है, जिससे काफी महत्वपूर्ण जड़ी-बूटियों और चारा घासों के नष्ट हो जाने की संभावना पैदा हो गयी है। यहां तक कि दूब घासभी इसके नजदीक नहीं उग पाती है। इसकी झाड़ियों में तापमान कुछ अधिक होता है एवं इनमें एक विशेष किस्म की गंध आती है, जिससे छोटे-छोटे प्राणी भी इस वनस्पति के बीच नहीं रह पाते हैं।

इस पौधे से सबसे अधिक खतरा "प्राकृतिक भोजन श्रृंखला" के असंतुलित होने का हो गया है। वनस्पति विज्ञानियों के अनुसार जब एक पौधा लुप्त होता है, तो उसके साथ उस पर आश्रित 10 से 30 अन्य प्रजातियां (वनस्पति और प्राणी) भी लुप्त हो जाते हैं, जैसे प्राकृतिक भोजन श्रृंखला में कीट पतंगे वनस्पतियों पर, मेंढक कीट पतंगों पर और सांप मेंढक पर निर्भर होता है। वनस्पतियों के नष्ट होने पर इस श्रृंखला से जुड़े सभी प्राणियों के सामने जीवन के अस्तित्व का संकट पैदा हो जायेगा।

भूमि प्रदूषण फैलाने वाला यह पौधा उस मिट्टी की भी सुरक्षा नहीं कर पाता है जहां यह उगता है। इसलिए इसका पहाड़ों में फैलना बहुत ही खतरनाक है, क्योंकि इस पौधे के कारण पहाड़ों में भूक्षरण की प्रक्रिया बढ़ जाती है। इसका कारण यह है कि यह खुद तो मिट्टी को बांधता नहीं, इसकी उपस्थिति में दूसरे पौधे भी नष्ट हो जाते हैं। यह अन्न की पैदावार को भी प्रभावित कर सकता है। अमरीका में इसके उन्मूलन के लिए "डाइक्वार" नामक "हर्बिसाइड" का छिड़काव किया जाता है। बड़ा होने पर इस पौधे को छूना भी खतरे से खाली नहीं है।

अतः, समय रहते इसके उन्मूलन के बारे में गंभीरता से सोचा जाना चाहिए। इसके लिए 'चिपको आंदोलन' 'गाजर घास उखाड़ो आंदोलन' की आवश्यकता है।

— जगमोहन सिंह रौतेला
सत्यनारायण मन्दिर
देहरादून - 249204

2. पपीता - एक बहुगुणकारी फल

"पपीते में कई गुण, पपेन में सौ गुण" पपीते के संबंध में यह कहावत प्रचलित है। पपीता पौष्टिक स्वास्थ्यवर्द्धक और सस्ता फल है। आम तौर पर पका हुआ पपीता ही खाया जाता है, लेकिन कच्चा पपीता पके हुए पपीते से ज्यादा लाभकारी है। कच्चे पपीते से दूध जैसा पदार्थ निकलता है, इसे पपेन कहते हैं। वैज्ञानिक शोधों से पता चला है कि पपेन काफी उपयोगी खाद्य रसायन है।

पाचन की सबसे बढ़िया दवा, पेप्सिन कच्चे पपीते के दूध से बनायी जाती है। पपीते पर की गयी शोधों से पता चला है कि पपीते का रस अपने वजन से 200 गुने अधिक प्रोटीन को बहुत जल्दी पचा लेता है। इसलिए, पपीता पेट के सभी

विकारों के लिए फायदेमंद है। पपेन प्रोटीन का हाईड्रोलिसिस करके, उसे ज्यादा सुपाच्य बनाता है। यह मांस से बने पदार्थों को मुलायम और स्वादिष्ट बनाता है। दूध के साथ मिलाकर यह उपयोगी लैक्टोपेप्टोन बनाता है। पपेन को चॉकलेट और मिठाइयों में डालकर भी खाया जा सकता है। औषधि, कपड़ा, चमड़ा उद्योगों में भी इसके व्यापक उपयोग हैं। पपेन हेयर रिमूवर के रूप में भी उपयोगी है। पपेन बनाने के लिए पेड़ पर ही कच्चे लेकिन पूरी तरह विकसित फल चुन लिये जाते हैं। फल पकने पर उनमें दूध बहुत कम रह जाता है।

दूध निकालने के लिए चुने हुए फल एक दूसरे से अलग-अलग लटके हुए होने चाहिए। उनके नीचे एल्यूमिनियम की ट्रे लटका कर बांध दी जाती है। उसके बाद, फल को स्टेनलेस स्टील के चाकू से हल्का-सा चीरा लगा दिया जाता है। चीरा लगाते समय यह ध्यान रखा जाता है कि चीरा नीचे से ऊपर की तरफ ही लगाया जाए। ऐसा करने से दूध (लेटेक्स) ज्यादा निकलता है। चीरा लगाने का चाकू लोहे का नहीं होना चाहिए। एक चीरे से दूसरे चीरे के बीच थोड़ी जगह छोड़ दी जाती है, ताकि बाद में उस बची हुई बीच की जगह में भी चीरा लगाया जा सके। दूसरी बार चीरा चार-पांच दिन बाद लगाया जाता है। चीरा सुबह के समय ही लगाया जाता है। उस समय फल से दूध ज्यादा निकलता है।

चीरा लगाने के बाद फल से दूध टपकना शुरू हो जाता है। करीब दस मिनट में यह काम पूरा हो जाता है। वह ट्रे में जम जाता है। इसे कुछ देर धूप में रखकर सुखा लेते हैं फिर इसे पीसकर चूर्ण बना लेते है। दूध को ज्यादा तेज आंच पर नहीं सुखाया जाता, क्योंकि इससे इसके काफी गुण नष्ट हो जाते हैं। इसका चूर्ण पीला-सा बनता है।

दूध निकालने के बाद पपीते को स्वाभाविक रूप से पकने पर तोड़ लिया जाता है। दूध निकालने से पपीते के स्वाद और गुणों में थोड़ा अन्तर आ जाता है। इससे इसके बीजों की अंकुरण शक्ति नष्ट हो जाती है।

औषधीय उपयोग - पेट संबंधी बीमारियों, कब्ज, अजीर्ण, भूख न लगना, पेट दर्द आदि में कच्चा पपीता बहुत लाभकारी है। कच्चे पपीते का ताजा दूध चमड़ी के रोगों के लिए रामबाण है। दाद खाज-खुजली आदि पर लगाने से ये बहुत जल्दी ठीक हो जाते हैं। कच्चे पपीते का दूध बच्चों को पिलाने से जिगर की तकलीफ दूर हो जाती है। कच्चे पपीते की सब्जी बनाकर खाने से कब्ज़ दूर हो जाता है। पेट के कीड़े मर जाते हैं।

पपेन से अल्सर, कैन्सर, डिप्थीरिया और चर्म रोगों की दवाइयां बनायी जाती हैं। आयुर्वेदिक चिकित्सा में कच्चे पपीते को मलरोधक, वायु और कफ मिटाने वाला बताया गया है।

अन्य उपयोग - क्रीम, स्नो, टूथपेस्ट, चमड़ी के दाग धब्बे मिटाने वाली दवाइयां तथा अन्य कई सौदर्य प्रसाधनों में पपेन का उपयोग किया जाता है। डिब्बा बन्द मांस को नर्म बनाये रखने, च्विंगम बनाने और शराब को साफ करने में भी पपेन का उपयोग किया जाता है। कच्चे पपीते के गूदे से कपड़े पर लगे दाग धब्बे मिटाये जाते हैं। ऊनी, सूती कपड़ों को सिकुड़ने से बचाने और उसकी चमक बनाये रखने के लिए भी यह उपयोगी है। पपेन चमड़े की टैनिंग और भेड़ की ऊन को साफ करने में भी काम आता है।

— श्लोक प्रसाद सिंह
द्वारा : श्री अलखदेव सिंह, सहनौरा,
चकनवादा - 803213 (पटना)

3. भोजन और मस्तिष्क

भोजन हमारे लिए बहुत जरूरी है। जीवन में सभी कार्यों को सम्पन्न करने हेतु ऊर्जा की आवश्यकता होती है। यह ऊर्जा शरीर में ही खाद्य-पदार्थों के विघटनों के फलस्वरूप प्राप्त होती है। भोज्य पदार्थ हमारे शरीर के साथ-साथ मस्तिष्क को भी प्रभावित करता है। भिन्न-भिन्न प्रकार के भोजन पदार्थों में भिन्न-भिन्न प्रकार के गुण पाये जाते हैं। ये गुण मस्तिष्क को प्रभावित करते हैं।

भोजन करने के उपरान्त मनुष्य के मस्तिष्क में न्यूरो-ट्रांसमीटर नामक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। ये पदार्थ अपना प्रभाव मुख्यतः दो प्रकार से प्रकट करते हैं। कुछ न्यूरो-ट्रांसमीटर्स मस्तिष्क की कोशिकाओं को शान्त करते हैं, एवं कुछ उत्तेजित करते हैं। वे न्यूरोट्रांसमीटर्स जो मस्तिष्क की कोशिकाओं को शान्त करते हैं, न्यूरोइनहीबीटरी न्यूरो-ट्रांसमीटर्स कहलाते हैं। इनके मुख्य उदाहरण - सिरोटोनिन, गामा एमीनो ब्यूटरिक अम्ल एवं अन्य एमीनो

अम्ल हैं। वे न्यूरो-ट्रांसमीटर्स जो मस्तिष्क की कोशिकाओं को अशान्त अथवा उत्तेजित करते हैं, उन्हें न्यूरो एक्साइटेटरी न्यूरो-ट्रांसमीटर्स कहते हैं। एसिटिल कोलीन, नॉन एड्रीनैलीन एवं एड्रीनैलीन इनके मुख्य उदाहरण हैं।

मस्तिष्क में किस तरह के न्यूरो-ट्रांसमीटर्स उत्पन्न होते हैं, यह भोज्य पदार्थों पर काफी हद तक निर्भर करता है। यदि भोजन में शर्करा (कार्बोहाइड्रेट्स - $C_6H_{12}O_6$) की मात्रा अधिक होती है तो मस्तिष्क में न्यूरो-ट्रांसमीटर्स (न्यूरो इनहीबीटरी) उत्पन्न होते हैं, जिससे मनुष्य या अन्य प्राणियों के मस्तिष्क शान्त हो जाते हैं। इसके विपरीत, यदि भोजन में प्रोटीन अथवा मांस की अधिकता हो तो मस्तिष्क में न्यूरो एक्साइटेटरी न्यूरो-ट्रांसमीटर्स उत्पन्न होते हैं, जिससे मस्तिष्क अशान्त हो जाता है। शर्करा के द्वारा मस्तिष्क में न्यरो इनहीबीटरी न्यूरो-ट्रांसमीटर, सिरोटोनिन की मात्रा अधिक हो जाती है। ठीक इसके विपरीत मांस या प्रोटीनयुक्त भोज्य पदार्थों से, जिनमें ट्रिप्टोफान नामक एमीनो अम्ल नहीं होता है, मस्तिष्क में सिरोटोनिन की कमी हो जाती है एवं उत्तेजनात्मक न्यूरो एक्साइटेटरी न्यूरो-ट्रांसमीटर्स की वृद्धि हो जाती है।

गाय, बकरी, भेड़ आदि शाकाहारी जानवरों में सिरोटोनिन की अधिकता के कारण उनमें शान्त प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं, जब कि शेर, चूहे व अन्य मांसाहारी जीवों में सिरोटोनिन के अभाव के कारण उनमें अधिक उत्तेजना व चंचलता पायी जाती है। उनमे नींद का अभाव भी देखा जाता है। इन प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकलता है कि मस्तिष्क की शान्त और अशान्त प्रवृत्तियाँ अथवा प्राणियों का शान्त और अशान्त चित्त भोजन पदार्थों पर काफी हद तक निर्भर करता है। योरोप के विभिन्न उन्नत देशों में नींद न आने का एक प्रमुख कारण वहां के लोगों का मांसाहारी होना भी है। वहां पर नींद न आने की बीमारी बहु-प्रचलित है, और नींद की दवाइयों का बहुतायत से प्रचलन इस बात का द्योतक है।

अमरीका के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक - लिबरमैन ने इस विषय में महत्वपूर्ण खोजें कीं। उन्होंने कुछ घायल व्यक्तियों के भोजन में शर्करा की मात्रा में वृद्धि कर दी तो पाया कि उनके शरीर में होने वाली पीड़ा कम होने लगी है। इस प्रयोग के आधार पर उन्होंने बताया कि शर्करा की मात्रा अधिक होने से मस्तिष्क में ट्रिप्टोफान नामक न्यूरो-ट्रांसमीटर बढ़ जाता है, जो मस्तिष्क में शारीरिक दर्द की संवेदना को कम कर देता है। इस बात की पुष्टि के लिए एक अन्य प्रयोग में यह देखा गया है कि शारीरिक पीड़ा से पीड़ित व्यक्ति को अगर ट्रिप्टोफान की गोलियाँ या केप्सूलें दी जाएं तो उनके दर्द में कमी आ जाती है।

स्मरण-शक्ति पर भी भोजन का प्रभाव पड़ता है। वे भोज्य पदार्थ जिनमें कोलीन (कोलाइन) नाम के एमीनो अम्ल होते हैं, भोज्य रूप में ग्रहण करने से स्मरण-शक्ति तीव्र हो जाती है। इसका कारण यह है कि ये पदार्थ (कोलीन) मस्तिष्क में एसिटिल कोलीन न्यूरो-ट्रांसमीटर की मात्रा को बढ़ा देते हैं। एसिटिल कोलीन स्मरण-शक्ति बढ़ाने में अति सहायक होता है। इसके विपरीत, अगर उन पदार्थों को भोजन के रूप में लिया जाए जो एसिटिल कोलीन की मात्रा को कम कर देते हैं, तो स्मरण-शक्ति भी धीरे-धीरे कम हो जाती है।

प्राणियों की अन्य प्रवृत्तियों के साथ भी भोजन का गहरा सम्बन्ध है। प्राणियों के विचार एवं हिंसक अथवा अहिंसक प्रवृत्तियों पर भी भोजन का प्रभाव पड़ता है। सात्विक भोजन जहां मस्तिष्क को शान्त रखता है, वहीं असात्विक भोजन मस्तिष्क को हद से ज्यादा उत्तेजित करता है। सात्विक भोजन से मस्तिष्क में न्यूरोइनहीबीटरी ट्रांस मीटर्स उत्पन्न होते हैं, जिनसे मस्तिष्क शान्त रहता है। प्राचीन ऋषिमुनियों की शान्त प्रकृतियाँ इस बात का द्योतक हैं। विभिन्न प्रयोगों से यह देखा जाता है कि मानव में धैर्य, लगन, सहन आदि जैसे उत्कृष्ट गुण सात्विक भोजन के कारण और अधिक उन्नत होते हैं। मांस अथवा अधिक प्रोटीनयुक्त भोजन मस्तिष्क को अशान्त कर देता है। मस्तिष्क चंचल हो उठता है। अधिक उत्तेजित होने के कारण मस्तिष्क में गर्म विचार उत्पन्न होने लगते हैं, इससे हिंसक प्रवृत्तियाँ जन्म ले सकती हैं। इसी कारण कुत्ते, बिल्लियां, शेर आदि मांसाहारी जीव भूख, प्यास अथवा अन्य विषम परिस्थितियों में धैर्यहीन एवं हिंसक हो उठते हैं, जबकि गाय, बकरी, भेड़ आदि प्रायः शान्त रहते हैं।

भोजन पदार्थों में सामान्य परिवर्तन कर देने से अनेक आश्चर्यजनक परिणाम सामने आते हैं। ऐसे आश्चर्यजनक परिणाम मानसिक उथल-पुथल के समय भी देखे जाते हैं। अवसाद के मरीजों को यदि वे भोजन दिए जाएं जिनके द्वारा टायरोसिन नाम का एमीनो अम्ल मस्तिष्क में बढ़ जाए तो अवसाद (डिप्रेशन) समाप्त हो जाता है। इसका कारण यह है कि यह एमीनो अम्ल मस्तिष्क में नार-एपिनेफरीज नाम के

ट्रांसमीटर में परिवर्तित हो जाता है, जो अवसाद को समाप्त करने में बहुत सहायक होता है। इसी तरह पागलपन अथवा अन्य मानसिक रोगों में भी शर्करायुक्त भोजन लाभदायक होते हैं।

उपर्युक्त विवरणों से हम पाते है कि भोजन हमारे शरीर को हर तरह से प्रभावित करता है। हमारे समाज में आज जो हिंसक भावनाएं पनप रही हैं, उनका सम्बन्ध निश्चित रूप से भोजन पदार्थों से है। वैज्ञानिक आधार पर इसका कारण भोज्य पदार्थों के द्वारा नॉन एड्रीनैलीन की मात्रा मस्तिष्क में बढ़ जाना है। यह पदार्थ उत्तेजनात्मक (एक्साइटेटरी) न्यूरो-ट्रांसमीटर का कार्य करता है, जिसके कारण प्राणी में हिंसा की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। अतः, भोजन में परिवर्तन करने से हिंसक प्रवृत्तियों को कम किया जा सकता है। सात्विक भोजन अथवा शाकाहारी भोजन देने से यह प्रवृत्ति समाप्त की जा सकती है।

सारांश यह है कि प्राणियों के मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाली भावनाओं का सम्बन्ध निःसन्देह भोजन पदार्थों से है। इस क्षेत्र में होने वाली अन्य खोजों से यह बात और स्पष्ट हो गयी है कि भोजन पदार्थों को हम चिकित्सा के रूप में कैसे उपयोग करें। भविष्य में होने वाली अन्य खोजों से संभवतया यह और अधिक स्पष्ट हो जाएगा।

(सफदरजंग अस्पताल, नई दिल्ली, के न्यूरोलॉजी विभाग के अध्यक्ष डॉ. डी. सी. जैन की खोज एवं अन्य अत्याधुनिक खोजों पर आधारित लेख।)

— राजेन्द्र सहाय
द्वारा : श्री. बी. बी. सहाय
पुरनीया तलाव, बर्नपुर - 713325, वर्द्धवान (प. बं.)

4. खनिजों की पहचान में पेड़ पौधों का योगदान

पृथ्वी के गर्भ में छिपे हुए खनिज भण्डारों की पहचान के लिए पौधों का सहारा लेना यूं तो पढ़ने में बड़ा विचित्र-सा लगता है, लेकिन दिल्ली विश्वविद्यालय में वनस्पति शास्त्र विभाग के शोधकर्ताओं ने व्यापक खोज के बाद ऐसे पौधों की खोज की है जिनके आधार पर खनिज भण्डारों का पता लगाया जा सकता है। उनके अनुसार, भारी धातुओं और फूलों के रंगों के बीच कोई सीधा सम्बन्ध प्रतीत होता है, जैसे "एस्फोडिल्क्स टे ढईफोलियस" नामक पौधा जिसके सफेद फूल होते हैं, ताँबा, मैगनीज, निकिल, जस्ता आदि धातुओं की उपस्थिति की सूचना देता है। शोधकर्ताओं का कहना है कि जिन स्थानों पर यह पौधा अधिक पाया जाता है वहाँ की मिट्टी में जस्ते की मात्रा काफी अधिक होती है।

"होमोनियमस्ट्रम रोंबटी" नामक पौधे की उपस्थिति से कोबाल्ट धातु का पता चलता है। यह आफ्रिका में काफी मात्रा में पाया जाता है। "बायोला कैलोमिनेरिया" नामक पौधा जिन स्थानों में होता है वहाँ जस्ता काफी मात्रा में उपस्थित होता है। इसलिए इस पौधे को जस्ता प्राप्ति का दूसरा स्रोत कहा जा सकता है।

इसी प्रकार, "बैरीनिया सिनेरा" नामक पौधा ताँबा, कोबाल्ट, जस्ता और निकिल धातुओं का संकेत कहा जा सकता है। इस पौधे के गुलाबी फूल उस मिट्टी में पाये जाते है, जहाँ उक्त धातुऐं काफी मात्रा में उपस्थित होती हैं। ब्राजील में पाये जाने वाला पौधा 'वैलेजिया कौडिया" हीरों की खोज खबर रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

हमारे देश में कर्नाटक और बिहार में "पोयेसिलोन्यूरा-नाइडिकम" पौधा काफी मात्रा में मिलता है जो लौह धातु के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी देता है। राजस्थान में मिलने वाला पौधा "कैलोटिपिस प्रोसेरा" जिप्सम युक्त जमीन पर ही होता है। इसी तरह "सिप्लोकोस" जाति का पौधा एल्युमिनियम धातु की खबर देता है।

वनस्पति वैज्ञानिकों का कहना है कि ऐसे पौधों को पहचानने की यह विधि बहुत सरल है। जो भी हो, पृथ्वी के गर्भ में छिपे खनिज-पदार्थों का पता चलाने में पेड़ पौधों की यह भूमिका निश्चित रूप से उपयोगी होगी।

— शाह आलम सिद्दिकी
15, रेस्ट हाउस, बिछिया रेलवे कालोनी
गोरखपुर - 273 012

5. घेंघा रोग

मनुष्य के गले में एक अंतःस्रावी ग्रंथि (एण्डोक्राइन ग्लैंड) होती है, जिसे थायराइड ग्रंथि कहते हैं। आयोडीन की

कमी से यह ग्रंथि फूल जाती है। इसे घेंघा रोग (ग्वाइटर) या आयोडीन डिफिसिएंसी डिसआर्डर (आइ. डी. डी) कहते हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में तकरीबन 140 मिलियन लोग आयोडीन की कमी के कारण मस्तिष्क रोगों या घेंघा की बीमारी से पीड़ित हैं। इस रोग में गर्दन का फूलना जहाँ चेहरे को विकृत बनाता है, वहीं मस्तिष्क रोगों से मानसिक क्षमताएँ कम हो जाती हैं।

घेंघा प्रभावित क्षेत्र

भारत के पहाड़ी इलाकों मुख्यतः जम्मू-काश्मीर, सिक्किम, असम, नागालैण्ड, अरुणाचलप्रदेश, हरियाणा सहित उत्तर प्रदेश के गोंडा, देवरिया, गोरखपुर तथा बिहार के कुछ जिलों में ज्यादा लोग घेंघा रोग से प्रभावित हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में तो 1/3 भाग की आबादी इस रोग से पीड़ित है। पहाड़ी क्षेत्रों के अतिरिक्त, पू. उत्तर प्रदेश के 14 जिले, बिहार के 9 जिले, प. बंगाल के 5 जिले, तथा पंजाब के 3 जिले इस रोग से प्रभावित हैं।

पर्वतीय क्षेत्रों और वाढ़ग्रस्त इलाकों में आयोडीन (जो मिट्टी में घुली रहती है) बाढ़ के साथ बह जाती है। यही कारण है, इन क्षेत्रों में आयोडीन का अभाव (मुख्यतः जल तथा अंशतः वहां की वनस्पतियों में) हो जाता है और लोग आयोडीन की कमी से होने वाले रोगों से ग्रसित हो जाते हैं। एक नवीनतम सर्वेक्षण के अनुसार विश्व की सबसे सघन घेंघा पट्टी (ग्वाइटर बेल्ट) भारत में है, जहां कश्मीर से लेकर नागा पर्वतमाला तक के 2400 कि. मी. के भू-भाग में लगभग 15 करोड़ लोग (विशेषतः बच्चे और वयस्क) घेंघा से बुरी तरह प्रभावित हैं। मिजोरम में सबसे अधिक घेंघा रोगी पाये जाते हैं। इसके बाद उत्तर प्रदेश और बिहार का स्थान है।

आयोडीन आवश्यक क्यों ?

आधुनिक शोधकार्यों से यह ज्ञात हुआ है कि आयोडीन (अल्पांश में) मनुष्य के शारीरिक और मानसिक विकास के लिए बहुत आवश्यक है। अल्पांश में यह पेय जल तथा वनस्पतियों में मौजूद रहता है। अतः, इसे बाहर से लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। भारत में प्रतिदिन एक व्यक्ति 10-12 ग्राम नमक का उपयोग करता है। उसके लिए 150 माइक्रो ग्राम आयोडीन की जरूरत होती है। अगर यह मात्रा न मिले तो शरीर का मानसिक विकास प्रभावित होता है। गर्भवती महिलाओं में आयोडीन की कमी से गर्भस्थ शिशु का शारीरिक और मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। ऐसे बच्चे कमजोर तथा मंद बुद्धि के होते हैं। इनके बहरे, गूंगे या मानसिक बौनापन की संभावना बनी रहती है। इनका कद छोटा होता है तथा ये 'क्रेटिनिज्म' नामक रोग से पीड़ित हो सकते हैं।

गर्भवती महिलाओं को नियमित रूप से आयोडीन युक्त नमक का प्रयोग करना चाहिए। आयोडाइज्ड साल्ट के अतिरिक्त, अब आयोडीन के कैप्सूल तथा टीके (इंजेक्शन) भी बन गये हैं। चिकित्सकों के अनुसार, एक आयोडाइज्ड इंजेक्शन का असर 3-5 वर्ष तक रहता है। चीन में ऐसे टीके तथा कैप्सूल का ज्यादा प्रचलन है तथा इसके कोई दुष्प्रभाव नजर नहीं आये हैं। समुद्री मछलियों में भी आयोडीन की प्रचुर मात्रा होती है। अतः, ऐसे व्यक्ति जिन्हें ज्यादा नमक खाना मना है (जैसे हृदय रोगी तथा उच्च रक्तचाप वाले व्यक्ति), वे समुद्री मछली या ऐसी मछली का तेल प्रयोग में ला सकते हैं।

नेशनल ग्वाइटर कंट्रोल प्रोग्राम

घेंघा या गलगण्ड रोग की गंभीरता को देखते हुए भारत सरकार ने 1962 में नेशनल ग्वाइटर कंट्रोल प्रोग्राम चलाया था। इस प्रोग्राम के अंतर्गत घेंघा प्रभावित क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया गया तथा इन क्षेत्रों में आयोडाइज्ड नमक का वितरण, आयोडाइज्ड कैप्सूल तथा टीके की व्यवस्था की गयी। किंतु, इस राष्ट्रीय कार्यक्रम को आंशिक सफलता ही मिली।

अन्य विकासशील देशों की तरह भारत सरकार भी आयोडीन की बड़ी मात्रा उपलब्ध करवा कर इस रोग पर नियंत्रण कर सकती है। नन्हें शिशुओं के लिए आयोडीन युक्त तेल की व्यवस्था करनी चाहिए। ऐसा तेल उनके शारीरिक और मानसिक विकास में रामबाण औषधि साबित होगा। एस. हैटजल के अनुसार, गंभीर से गंभीर रूप से त्रस्त 3 से 5 वर्ष की उम्र के शिशु को आयोडीन युक्त तेल की एक खुराक काफी होती है।

भारत सरकार ने घेंघा प्रभावित जिलों में आयोडीन रहित नमक की बिक्री पर प्रतिबंध लगा दिया है। निश्चित ही यह एक शुभ संकेत है। सामान्य व्यक्ति भी अगर आयोडीन युक्त नमक का ही उपयोग करे, तो अच्छी बात होगी; क्योंकि इसके कोई कुप्रभाव नहीं होते हैं तथा यह स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद

भी है। अगर व्यापक स्तर पर आयोडाइज्ड नमक का प्रयोग नहीं किया गया, तो इस शताब्दी के अंत तक 200 मिलियन लोग घेंघा तथा आयोडीन की कमी से होने वाली बीमारियों से ग्रसित हो सकते हैं। अतः, आयोडीन युक्त लवण के, जिसके निरंतर प्रयोग से घेंघा रोग से बचा जा सकता है, व्यापक प्रयोग की आवश्यकता है।

— सीताराम सिंह पंकज
अध्यक्ष, जंतुविज्ञान विभाग,
के. एस. आर. कॉलेज, सरायरंजन - 848 127

6. खेजड़ी का संवर्धन

खेजड़ी का वृक्ष जो अब तक शुष्क एवं अर्द्ध-शुष्क रेगिस्तानी भूमि पर ही उगता था, अब केन्द्रीय मरु अनुसंधान संस्थान (काजरी), जोधपुर की प्रयोगशाला की नियंत्रित परिस्थितियों में भी उगाया जा सकता है। काजरी के वैज्ञानिक काफी अर्से से इसकी वंश वृद्धि तथा उन्नत किस्म की पौध तैयार करने के लिए प्रयत्नरत् थे। खेजड़ी (प्रोसोपिस सिनेरेरिया) बहुत धीमी गति से उगने वाला रेगिस्तानी पेड़ है। इसके बीज भूमि में आसानी से अंकुरित नहीं होते। काजरी के वैज्ञानिकों ने परखनली में उन्नत किस्म का पौधा तैयार करने के लिए कोशिका संवर्धन तकनीक (टिश्यूकल्चर विधि) का सहारा लिया है।

कोशिका संवर्धन तकनीक द्वारा मई से सितम्बर के बीच उत्पन्न खेजड़ी के वृक्ष की नयी शाखाओं में "नोड" सहित हिस्से (15-20 मि.मी.) को काटकर पानी से अच्छी प्रकार धोया गया और 0.1% 'मरक्यूरिक क्लोराईड' के घोल में 3 से 5 मिनट तक रखा गया। इसके बाद असंक्रमित वातावरण में निसंक्रमित परिशुद्ध जल से खेजड़ी के इस हिस्से को धोकर स्थानांतरण क्रिया द्वारा 'मुराशिगे और स्कूग' के पादप वृद्धिकारक यौगिकों के संवर्धन माध्यम में कुछ परिवर्तन कर प्रतिस्थापित किया गया। इसके एक सप्ताह में ही शतप्रतिशत "नोडों" को नयी शाखाओं में परिवर्तित किया गया। तत्पश्चात्, इन नयी शाखाओं को काटकर इन्हें जड़ें उत्पन्न करने वाले पादप वृद्धिकारक संवर्धक रासायनिक तत्व (हारमोंस) वाले संवर्धक में प्रतिस्थापित किया गया। प्रतिस्थापन के तीन चार सप्ताह पश्चात ही नयी शाखाओं में से 80% में पूर्ण रूप से विकसित जड़ें उत्पन्न हो गयीं। इस प्रक्रिया की अवधि में नयी शाखाओं की लम्बाई में भी वृद्धि हुई। इस विधि की सफलता के लिए 28 से 30^0 से. का तापमान और 16 घंटे प्रतिदिन कृत्रिम रोशनी का वातावरण रखा गया।

ध्यान रहे कि खेजड़ी जहाँ एक ओर जनजीवन के लिए छायादार वृक्ष है, वहीं वह पशुओं का चारा भी है। इसकी कुछ किस्मों की फलियाँ खाद्य के रूप में भी इस्तेमाल की जाती हैं।

— वासुदेव पालीवाल
मौकाती पाड़ा, जैसलमेर - 345 001. (राज.)

7. मानव और लोहा

आज के विज्ञान युग में लोहे का अपना एक विशेष महत्व है। आदमी अपने व्यावहारिक जीवन में वाह्य रूप में हमेशा लोहे से सम्बन्ध तो रखता ही है, यह हमारे शरीर की प्रत्येक रक्त कोशिका में भी विद्यमान है। हमारे रक्त के लाल होने का राज है उसमें सूक्ष्म मात्रा में पाया जाने वाला आयरन।

आयरन शरीर के कुल भार का 0.004% होता है। एक वयस्क आदमी के शरीर में 3 से 4 ग्रा. तक आयरन पाया जाता है। मनुष्य व अन्य उच्च वर्ग के जन्तुओं के रक्त में लाल रंग की रक्त कोशिकाएं पायी जाती है, जिन्हें "इरिथ्रोसाइट्स" कहते हैं। इन कोशिकाओं के लाल होने का मुख्य कारण है उनमें विद्यमान आयरन युक्त "हिमोग्लोबिन"। हिमोग्लोबिन-ए पानी में अविलेय "क्रोमोप्रोटीन" है जो दो समूहों से मिल कर बनता है; एक पैत्रक समूह "हीमीन" जिसमें आयरन पाया जाता है, और दूसरा ग्लोबुलिन समूह। मनुष्य के रक्त में पायी जाने वाली हिमोग्लोबिन नामक प्रोटीन 574 अमीनोअम्ल अवशेषों से मिलकर बनती है जो जीवन के लिए अति आवश्यक है। हमारी जीवन दायिनी आक्सीजन इसी हीमोग्लोबिन में अवशोषित हो कर रक्त के साथ पूरे शरीर में पहुंचती है। यदि यह क्रोमो प्रोटीन किसी तरह समाप्त हो जाय तो हमारा जीना मुश्किल है। हिमोग्लोबिन में 0.335% आयरन पाया जाता है, और यह मनुष्य के रक्त का 15% भाग बनाता है। शरीर का पूरा हीमोग्लोबिन इरिथ्रोसाइट्स में पाया जाता है, जो कुल रक्त के आयतन का 45% भाग बनाती है। इस प्रकार, लाल रक्त कणिकाएं अपने में 30% हीमोग्लोबिन समावेशित रखती हैं, और एक आदमी के 100 मि.ली. रक्त में 50 मि.ग्रा. आयरन

पाया जाता है। हीमोग्लोबिन क्रमशः आक्सीहीमोग्लोबिन (हीमोग्लोबिन-ए) जिसका पी.एच.मान 6.7 होता है, अवचयित हीमोग्लोबिन का निर्माण करते हुए शरीर के अन्दर रक्त के साथ आक्सीजन वाहक का कार्य करता है।

भोजन से आंत्र नली द्वारा आयरन हमारे शरीर में केवल फेरस आयरन अवस्था में ही अवशोषित होता है, और रक्त-प्लाज्मा में अवशोषण के बाद यह हीमीन के संश्लेषण के लिए उपलब्ध हो जाता है शरीर में उपलब्ध कुल आयरन का 70% रक्त में तथा शेष 30% ऊतकों में हिमेटिन और नान-हिमेटिन आयरन रूप में पाया जाता है। यह जीवित कोशिकाओं में वातावरणीय आक्सीजन के वाहक के रूप में कार्य करता है। इसका अणु भार 13,000 है। जबकि होमोग्लोबिन का अणु भार 67500 होता है।

एक वयस्क आदमी के लिए प्रतिदिन 10 से 15 मि.ग्रा. आयरन की आवश्यकता पड़ती है, तथा 3 से 8 साल के बच्चों के लिए 8 से 14 मि.ग्रा. या कहें कि उन्हें प्रतिदिन प्रति कि.ग्रा. भार में 0.6 मि.ग्रा. आयरन आवश्यक है। संयुक्त राज्य की राष्ट्रीय अनुसंधान परिषद की "खाद्य और पोषण" समिति ने एक वर्ष तक के बच्चों के लिए प्रतिदिन 6, 13 से 20 वर्ष तक के लिए 15, और एक वयस्क व्यक्ति के लिए 12 मि.ग्रा. आयरन प्रतिदिन की आवश्यकता का प्रस्ताव रखा है। एक व्यक्ति में प्रतिदिन मूत्र के साथ 0.1 मि.ग्रा. आयरन नष्ट हो जाता है। औरतों में प्रतिमाह 10 से 30 मि.ग्रा. लोहा नष्ट हो जाता है, जब कि आदमी में इतना नष्ट नहीं होता है। अतः, एक औरत के लिए प्रतिदिन 20 मि.ग्रा. आयरन आवश्यक है, जब कि आदमी के लिए यह 10 से 12 मि.ग्रा. प्रतिदिन पर्याप्त है। आज के युग में विश्व की आधी जनसंख्या दीर्घ स्थायी आयरन उपवास से जीवन यापन कर रही है। आयरन की कमी से शरीर में रक्ताल्पता या "एनीमिया" नामक रोग हो जाता है।

मानव को ही नहीं, वरन् पौधों के जीवन के लिए भी सूक्ष्म मात्रा में आयरन आवश्यक है। पौधों में क्लोरोफिल संश्लेषण के लिए आयरन आवश्यक है। **एस्पर्जिलस नाइजर** नामक जीवाणु की वृद्धि के लिए आयरन बहुत आवश्यक है। इसीलिए इसे "आयरन बैक्टीरिया" या "लोह जीवाणु" भी कहते हैं। मृदा में आयरन 0.4 से 27% तक पाया जाता है, जो फेरस और फेरिक धनायनों के रूप में रहता है तथा पौधे इसे इन्ही रूपों में शोषित करते हैं। आयरन की कमी से पौधों में नाइट्रोजन व फासफोरस की कमी हो जाती है जिस से होने वाली "क्लोरोसिस" की अपेक्षा पर्णहरिम हीनता शीघ्रता से हो जाती है। इसकी कमी से सेव के पौधों में पर्णहरिम हीनता जल्दी हो जाती है।

आयरन वसा के आक्सीकरण को बढ़ाता है। जिससे दूध और मक्खन में चर्बी की तरह गन्ध आने लगती है।

कुछ भोज्य पदार्थों में आयरन की मात्रा : 0-10 भाग प्रति दसलाख; सफेद ब्रेड, आटा, बाजरा, चावल, दूध, पनीर, मक्खन, ताजेफल, समुद्री मछली तथा आलू आदि।

10-50 भाग प्रति दसलाख : सम्पूर्ण भोज्य आटा, मांस, नट्स, सूखे फल, मूली, मटर, काफी तथा चाकलेट इत्यादि।

50-100 भाग प्रति दसलाख : भूसी, अण्डपीत, मांस पेशियां, मसूर, सेम, करसों आदि।

100 भाग प्रति दसलाख से ज्यादा : यकृत, वृक्क, चाय की पत्ती, कोको, अदरक, तथा करी पाउडर (750 भाग प्रति दसलाख)

आलू, मोटे-हरे तने, पत्तियाँ फलीदार पौधे लोहे की दृष्टि से अच्छी शाक-भाजी हैं जिनमें 8 से 16 भाग प्रति दसलाख या अधिक आयरन पाया जाता है। गन्ने में 160 से 260, गेहूँ के दाने में 20.8 से 32.2, नीबू वंश में 144, पालक में 40.6 और जौ, मक्का, धान, गोभी तथा मूली में क्रमशः 11.2, 20.8, 5.6, 11.2 तथा 5.6 भाग प्रति दसलाख आयरन पाया जाता है। सबसे अधिक आयरन करी पाउडर (750 भाग प्रति दसलाख) में पाया जाता है। गाय के दूध में केवल .3 से .7 भाग प्रति दसलाख आयरन पाया जाता है। इस प्रकार 1.2 कि.ग्रा. दूध से 0.6 मि.ग्रा. लोहा प्राप्त होता है। क्रीम में 2.915% फेरिक आक्साइड पाया जाता है। हरी सब्जी पकाकर खाने से प्रमुख विटामिन्स व कुछ प्रोटीन्स नष्ट हो जाते है; साथ में, 20% तक आयरन भी नष्ट हो जाता है।

इस प्रकार, लोहा न केवल हमारे बाह्य जीवन से सम्पर्क बनाये है, बल्कि हमारे शरीर के प्रत्येक रक्त-कण में भी हमारे जीवन के रूप में विद्यमान है।

— विजय उमराव
बी-31, भगतसिंह छात्रावास
चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कानपुर - 2.

प्रश्नोत्तरी

विज्ञान अथवा प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित यदि आपका कोई ज्ञान वर्धक, तर्कसंगत प्रश्न हो, तो कृपया हमें लिख भेजिए। हम उसे इस स्तंभ के अन्तर्गत छाप देंगे। प्रश्नों के छपने से एक महीने के अन्दर (आजकल हम अपने अंकों को समय से नहीं छाप पा रहे है) अध्येताओं में से किसी का संक्षिप्त एवं सुस्पष्ट उत्तर प्राप्त होने पर हम उसे भी इस स्तंभ के अन्तर्गत छाप देंगे।

किन्हीं अपरिहार्य कारणों से "वैज्ञानिक" के अंकों के प्रकाशन में अत्यधिक विलंब हो गया है। जुलाई-सितंबर, 1991 अंक में "प्रश्नोत्तरी" के अन्तर्गत छपे श्री संजय (पुत्र, श्री पालेराम, भैणी चन्द्रपाल, रोहतक - 124123) के दो प्रश्नों के उत्तर हम अध्येताओं से समय रहते आमंत्रित नहीं कर सके। इन प्रश्नों के उत्तर देने का हम स्वयं ही प्रयास कर रहे हैं। यदि इनसे अधिक स्पष्ट और संक्षिप्त उत्तर किसी अध्येता से प्राप्त हुआ, तो हम उसे भी छाप देंगे।

प्र. 1. तारे हम से लाखों मील दूर हैं। उनकी दूरी मापने की विधि क्या है?

उत्तर: सुदूर स्थित तारों की दूरियां मापने की कोई एक निश्चित विधि नहीं है। दूरी के अनुसार विधि भी बदल जाती है। इन विधियों में तारे के वेग की भी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। यह पाया गया है कि तारे, मन्दाकिनियां या नीहारिकाएं हम से जितनी अधिक दूर हैं, उतने ही अधिक वेग से वे हम से दूर जा रही हैं। जिस प्रकार सीटी बजाते हुए रेलगाड़ी के इंजन का सुनायी देता स्वर इंजन के हमारी ओर आते हुए और हम से दूर जाते हुए, एकदम बदल जाता है, यद्यपि सीटी एक ही स्वर में बजती है, उसी प्रकार तारों से निकलने वाले प्रकाश की आवृत्ति भी तारे के सापेक्षिक वेग के अनुसार बदल जाती है। स्रोत की आवृत्ति में प्रेक्षक के सापेक्ष उसके वेग के अनुसार परिवर्तन की गणना डाप्लर ने की थी, अतः इसे डाप्लर प्रभाव कहते हैं। इस प्रभाव के द्वारा तारे से निकलने वाले लाल रंग के प्रकाश में आवृत्ति के परिवर्तन को देख कर उसके पृथ्वी से सापेक्षिक वेग की गणना की जाती है जिससे कई लाख प्रकाश - वर्ष दूर स्थित तारों की दूरी का आकलन किया जाता है।

सौरमंडल के ज्योतिर्पिंडों की दूरियां मापने के लिए ब्रह्मांड को एक गोलक माना जाता है, और गणना के लिए गणित की गोलीय त्रिकोणमिति (स्फेरिकल ट्रिगोनोमीट्री) नाम की शाखा का उपयोग किया जाता है। पृथ्वी पर तीन या तीन से अधिक दूर-दूर स्थानों को चुनकर उनसे सौर मंडल के सदस्यों का एक-ही समय आनति (इंक्लिनेशन) कोण मापा जाता है जिससे इनकी दूरी की गणना हो जाती है। फिर, इनकी सहायता से लम्बन (पैरालेक्स) विधि अपनाकर, इन की अपेक्षा दूर के तारों की दूरियों का आकलन किया जाता है। किसी तारे की प्रखरता दूरी के वर्ग के उत्क्रम से घटती जाती है। इस सिद्धान्त का उपयोग करके ज्ञात और अज्ञात दूरी के तारों की प्रखरता का अनुपात निकालकर भी तारों की दूरियां निकाली जाती हैं। इन सरल विधियों के अतिरिक्त, अन्य जटिल विधियां भी है जिनका उपयोग तारों की दूरी के अनुसार प्रगत गणितिकी से किया जाता है।

प्र. 2: आइंस्टाइन के सापेक्षिकता सिद्धान्त की मुख्य धाराएं क्या हैं?

उत्तर: सापेक्षिकता विषय में आइंस्टाइन से पहले लोरेंट्ज़ मिंकोव्स्की आदि वैज्ञानिकों ने सैद्धान्तिक अनुसंधानों से निष्कर्ष निकाले कि (1) यदि दो निर्देश-तंत्र (रेफेरेन्स फ्रेम) परस्पर सापेक्ष वेग से चल रहे हैं, तो एक तंत्र में किन्हीं दो घटनाओं का अन्तराल दूसरे तंत्र में मापने पर भिन्न होगा, अर्थात समय की गति निर्देश-तंत्र के वेग पर निर्भर करती है (न्यूटन की गतिकी में और हमारी सामान्य समझ में भी समय का अन्तराल निर्देशतंत्र के सापेक्षिक वेग पर निर्भर नहीं करता है), (2) यह ब्रह्मांड दिक् एवं काल का सातत्यक (कन्टीन्यूम) है। इस के अतिरिक्त, प्रायोगिक अनुसन्धानों के परिणामों ने यह प्रदर्शित किया कि प्रकाश का वेग किसी भी तंत्र में मापा जाए, एक समान ही प्राप्त होता है, अर्थात, प्रकाश का वेग निर्देश-तंत्र के सापेक्ष वेग पर निर्भर नहीं करता है।

इनसे कई समस्याएं पैदा हो गयीं, जैसे, खगोलिकी अथवा परमाण्विकी में जिन घटनाओं, वेग, संवेग आदि का

मापन किया जाता है, वे यथार्थ होती हैं या आभासी ? इस प्रकार की समस्याओं का समाधान करने के लिए आइंस्टाइन ने जो सिद्धान्त बनाया उसकी दो प्रमुख धाराएं इस प्रकार हैं, (1) सरल रेखा में एकसमान परस्पर सापेक्ष वेग से चलने वाले असंख्य निर्देश-तंत्रों में भौतिकी के नियम सदा एक से ही रहते हैं, अर्थात् एक-समान रैखिक सापेक्ष गतिवाले सभी जड़त्वीय (इनर्शियल) निर्देश-तंत्र किसी भी भौतिक नियम का अनुसन्धान करने के लिए उपयोग किये जा सकते हैं, क्योंकि सभी समतुल्य हैं, (2) प्रकाश का वेग किसी पदार्थ के लिए अधिकतम होता है और किसी निर्देश-तंत्र के सापेक्ष वेग पर निर्भर नहीं करता है, अर्थात, प्रायोगिक परिणाम सिद्धान्त बन गया।

इन दो धाराओं को आइंस्टाइन का विशेष सापेक्षिकता सिद्धान्त कहते हैं। इनके उपयोग से एक-समान सरल-रेखा गतिकी के सारे भ्रम दूर हो गये। भौतिकी के परिमाप किसी भी निर्देशतंत्र में यथार्थ रूप से मापे जासकते हैं, और इन्हें किसी अन्य तंत्र के उसी रूप में रूपांतरित किया जासकता है। इन सिद्धान्तों पर आधारित समीकरणों का एक अद्वितीय परिणाम यह भी निकलता है कि प्रकाश के वेग की अपेक्षा अधिक वेग से चलने वाला पदार्थ उसी स्थान पर अपने प्रारंभ करने के समय से भी पहले पहुँच जाएगा। वैसे, यह परिणाम काल्पनिक है क्योंकि पदार्थ के वेग की अधिकतम मर्यादा प्रकाश का वेग है।

आइंस्टाइन के विशेष सापेक्षिक सिद्धान्त के बाद भी गतिकी की कुछ समस्याएं रह गयीं। सापेक्ष रूप से एक-समान गति न करने वाले त्वरित निर्देश-तंत्रों (जैसे, घूमता हुआ तंत्र) में भौतिकी के नियमों की स्थिति क्या होगी ? इसके अतिरिक्त, पदार्थ के द्रव्यमान के बारे में भी कुछ संशय था। न्यूटन की गतिकी के दूसरे नियमानुसार पदार्थ का जड़त्वीय द्रव्यमान उसके त्वरण का विरोध करता है। इसके साथ-साथ, न्यूटन के ही गुरुत्वाकर्षण नियमानुसार पदार्थ के दो पिंडों में उनके द्रव्यमान के गुणनफल के समानुपात में आकर्षण बल होता है। तो समस्या यह पैदा हुई कि ये दोनों प्रकार के द्रव्यमान लगभग या बिलकुल एक-समान होते हैं ? इस प्रकार की समस्याओं का समाधान आइंस्टाइन के व्यापक (जनरल) सापेक्षिकता सिद्धान्त से हुआ। इस के अनुसार, (1) जड़त्वीय और गुरुत्वीय द्रव्यमान, दोनों एक ही हैं (इस कारण, व्यापक सापेक्षिकता सिद्धान्त को गुरुत्वाकर्षण का सापेक्षिक सिद्धान्त भी कहते हैं), (2) निर्देशांको (कोआर्डिनेट्स) के सामान्य परिवर्तन में प्रकृति के नियम अपरिवर्तनीय (निश्चर) होते हैं, और (3) प्राकृतिक नियम (जैसे, गुरुत्वाकर्षण) चारों ओर के पदार्थ के पिंडों के वितरण द्वारा संपूर्ण रूप से निर्धारित होते हैं।

— डा. जनार्दन स्वरूप

शताब्दी समारोह

भारतीय पशु-चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्ज़तनगर - 242 122 (उत्तर प्रदेश) ने अपने कार्यकाल के सौ सफल वर्ष (1889-1989) पूरे करने की खुशी में वर्ष 1989 में बड़े हर्षोल्लास के साथ शताब्दी समारोह का आयोजन किया। इस अवसर पर डा. रमेश सोमवंशी ने संस्थान की ऐतिहासिक उपलब्धियों का क्रमिक संकलन एक पुस्तिका के रुप में किया है। यह पुस्तिका इज्ज़तनगर के हिन्दी अनुभाग से प्राप्त की जा सकती है।

"वैज्ञानिक" के एजेन्टों से निवेदन

"वैज्ञानिक" अध्ययन हेतु पत्रिका है; इसमें केवल पढ़ने के लिए सामग्री नहीं के बराबर होती है। अतः, एजेन्टों से निवेदन है कि अपनी आवश्यकतानुसार ही इसकी प्रतियां मंगाएं। "वैज्ञानिक" की सामग्री कभी पुरानी नहीं होती है। अतः, बिकी हुई प्रतियों को वापस लेने की कोई व्यवस्था नहीं है।

— संपादक

विज्ञान के बढ़ते कदम

प्लास्टिक की खेती ?

वर्तमान समय को 'प्लास्टिक युग' भी कहा जा सकता है। प्लास्टिक एक पेट्रोलियम जन्य उत्पाद है जिसे पर्यावरण विशेषज्ञ पसंद नहीं करते क्योंकि ये जैव-विघटन से परे है। दैनिक उपयोग के बाद असीमित मात्रा में कूड़े के रूप में ये इकट्ठा होता जा रहा है। विशेषज्ञों की कल्पना के अनुरूप यदि जैव-विघटित प्लास्टिक बनाया जा सके जो कालांतर में स्वयं ही नष्ट हो जाए तो पर्यावरण की दृष्टि से ये एक महत्वपूर्ण उपलब्धि होगी।

पश्चिम के शोधकर्ताओं ने एक ऐसा बैक्टीरिया खोजा है जो बहुलक (पॉलीमर) बनाने में सक्षम है। अल्कलीजीन्स यूट्रोफस नामक इस बैक्टीरिया में बहुलक के छोटे-छोटे कण पाये जाते हैं जो इसके शुष्क भार का 80 प्रतिशत होते हैं। ये नाज़ुक बहुलक 'पॉली-बीटा-हाइड्राक्सीब्यूटीरेट' के नाम से जाना जाता है। इस बैक्टीरिया को कुछ कार्बनिक अम्लों और शर्करा की खुराक देकर इस बहुलक को मजबूती दी गयी जिससे बोतलें बनायी गयीं जो पूर्ण रूप से जैव-विघटित हो सकती हैं। फिलहाल इसका उपयोग बड़े पैमाने पर शुरू नहीं हो सकता क्योंकि इसका मूल्य बहुत ज्यादा होता है।

अब शोधकर्ता इस प्रयास में हैं कि कैसे इस बैक्टीरिया के 'जीन' को मक्का या आलू जैसे पौधों में स्थानांतरित किया जा सकता है। ये बैक्टरिया 'एसीटिल कोइन्जाइम ए' से बहुलक बनाते हैं जो पौधों में स्वतः पाया जाता है।

इन प्रयासों की सफलता और पूर्ण तकनीक के विकास के बाद भविष्य में प्लास्टिक की खेती संभव हो जाए तो आश्चर्य नहीं।

ऑस्टियोपोरोसिस - बेहतर इलाज

हड्डियों में मृदुता (खुश्की) बड़ी परेशानी का कारण बन जाती है। विशेषकर ढलती उम्र में और महिलाओं में इस कमजोरी से हड्डियों की टूटफूट बढ़ जाती है। शोधकर्ताओं के प्रयास और दो वर्ष की जांच परख से - एटीड्रोनेट - नामक औषधि इस कमजोरी के इलाज में कारगर होती दिखती है। इसके प्रयोग से हड्डियों का टूटना बहुत-कुछ कम हो जाता है। एटलांटा, जॉर्जिया के एमोरी विश्वविद्यालय के डा. नेल्सन वॉट्स के अनुसार इस औषधि द्वारा नये फ्रेक्चर में कमी और हड्डियों में मजबूती आना निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इसके साथ कैल्शियम का प्रयोग करके ये प्रभाव देखे गये हैं। हारमोन द्वारा उपचार की तुलना में इस औषधि की श्रेष्ठता का कारण इसका कम खर्चीला होना और कमजोर हड्डियों को भी मजबूत बना देना है।

मानव रक्त का विकल्प

मानव रक्त के ऐसे विकल्प की ओर एक कदम बढ़ाया गया है जो असीमित मात्रा में उपलब्ध हो सके। इस विकल्प का प्रयोग मनुष्यों पर ही परखने की योजना बनायी गयी है। अमेरिका के बोस्टन अस्पताल में वर्ष 1990 में इसे परखा जाने वाला था। इस प्रयास के लिए एक अमेरिकी कंपनी 'बायोप्योर' ने गाय के रक्त से अतिशुद्ध हीमोग्लोबिन निकालने में सफलता पायी है।

– डा. दुर्गा प्रसाद पांडेय

बालविज्ञान

ग्रहण

प्रत्येक अमावस्या को सूर्यग्रहण नहीं पड़ता है। इसी प्रकार, प्रत्येक पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण नहीं पड़ता है। किसी-किसी अमावस्या या पूर्णिमा को ग्रहण क्यों पड़ता है, इसका विवरण प्रस्तुत है।

प्राचीन समय से ही आसमान में ग्रह, नक्षत्र, पुच्छल तारे, सूर्य और चन्द्र ग्रहण का अध्ययन किया जाता रहा है। इसका मुख्य उद्देश्य पन्चांगों को बनाने एवं मनुष्य की धार्मिक भावनाओं से जुड़ा हुआ था। मनुष्य के भाग्य तथा भविष्य को इन आकाशीयपिण्डों के भ्रमण से जोड़नेवाले फलित ज्योतिष (एस्ट्रोलौजी) का विकास आज से लगभग 3000 वर्ष पूर्व हुआ था। फलित ज्योतिष, वैज्ञानिकों द्वारा घोषित अब एक अन्धविश्वास है। यहाँ तक कि वर्ष 1940 के आसपास जब हौलीवुड द्वारा फलित ज्योतिष पर बारह फिल्में दिखाने की घोषणा हुई, तब 70 अमरीकी वैज्ञानिकों द्वारा विरोध प्रकट किया गया। बेबिलोन, ग्रीस, मिश्र, चीन और भारत में ग्रह-नक्षत्रों तथा ग्रहण-अध्ययन मुख्यतः फलित ज्योतिष के लिए ही किया गया था। मध्यकालीन योरोप में इसका प्रचलन प्रभावकारी रूप से उभरा था। परन्तु फलित ज्योतिष के लिए विकसित ग्रह-नक्षत्रों के भ्रमण, सूर्य-चन्द्र ग्रहण के समय और स्थिति के अध्ययन आज की वैज्ञानिक प्रगति तथा खगोलिकी (ऐस्ट्रोनोमी) के लिए महत्वपूर्ण योगदान हैं।

देश में प्रचलित विभिन्न पन्चांगों में समय-समय पर सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण की तिथियों की जानकारी दी जाती रही है, और इसका महत्व जनसाधारण में धार्मिक भावनाओं से प्रेरित होकर विभिन्न नदियों में पावन स्नान करने के रूप में जाना जाता है। परन्तु खगोलशास्त्रियों ने सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण की वर्षों पुरानी तिथियों का उपयोग महत्वपूर्ण वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त करने हेतु किया है। चन्द्र ग्रहण की जानकारी के प्रमाण ईसा से 750 वर्ष पूर्व से ज्ञात हैं। प्रसिद्ध खगोलशास्त्री एडमण्ड हैली (जिनके नाम पर हैलीधूमकेतु है) ने चन्द्र ग्रहण की सैकड़ों वर्ष पुरानी अनेक ज्ञात तिथियों से वर्ष 1695 में यह निष्कर्ष निकाला कि चन्द्रमा की गति में सदा स्थिरता नहीं है। एक अन्य खगोलशास्त्री, फिलिप कौवेल ने सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण के वर्षों पुराने अध्ययन की सहायता से यह ज्ञात किया कि सूर्य की गति में भी अल्प त्वरण है, परन्तु वर्ष 1939 में वैज्ञानिक हैरोल्ड स्पैनसर जौन्स ने पुराने प्रेक्षणों (दूरबीन द्वारा) की सहायता से सिद्ध किया कि कौवेल का कथन सही नहीं है, लेकिन जो अस्थिरता सूर्य की गति में कौवेल ने पायी है, उसका कारण समय नापने के तरीकों में स्वयं त्रुटि है। अतः, सही समय नापने के लिए उत्कृष्ट तरीकों की खोज हेतु विचार और प्रयोग कार्य चलते रहे। फलस्वरूप, अब अत्यन्त आधुनिक तरीका "आण्विक समय" माना जाता है। यदि पुराने तरीके में प्रतिदिन एक सेकण्ड के हजारवें हिस्से की गलती थी तो परमाण्विक घड़ी में एक सेकण्ड की गलती 3000 वर्ष में हो सकती है।

पृथ्वी (चन्द्रमा सहित) अपनी धुरी पर सूर्य के चारों ओर घूमती है और चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर, परन्तु गणना के लिए हम पृथ्वी को स्थिर तथा सूर्य को उसके चारों ओर घूमता मानते हैं। सूर्य ग्रहण तब होता है जब चन्द्रमा, सूर्य और पृथ्वी के बीच में होता है और चन्द्रमा की पृथ्वी पर छाया के कारण सूर्य दिखलायी नहीं पड़ता। चन्द्र ग्रहण में पृथ्वी सूर्य तथा चन्द्रमा के बीच में होती है तथा पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है और चन्द्र ग्रहण प्रतीत होता है। उपर्युक्त दो स्थितियाँ क्रमशः अमावस्या एवं पूर्णिमा को होती रहती हैं, जबकि ग्रहण बहुत कम हो पाते हैं, क्योंकि ग्रहण के लिए अन्य बातों का पूरा होना भी आवश्यक होता है। चित्र-1 (क,ख) सूर्य ग्रहण के अध्ययन हेतु दर्शाया गया है। चित्र-1 (क, ख) में चन्द्रमा (च) की छाया पृथ्वी (प) के जिस हिस्से पर पड़ रही है उसे धारीदार रेखाओं से दिखलाया गया है। अतः, इस क्षेत्र में जो देश या जगह आती है उस में पूर्ण सूर्य ग्रहण दिखलायी देगा और बिन्दुदार हिस्से में आंशिक ग्रहण। चित्र-1 (ख) में सूर्य ग्रहण के लिए अन्य शर्तों का पूरा होना दिखलाया गया है।

सूर्य (स) अपनी कक्षा में घूम रहा है तथा चन्द्रमा (च) अपनी कक्षा में। दोनों कक्षातलों के बीच का कोण (झुकाव) लगभग 5.2^0 है। पृथ्वी (प) वृत्ताकार (दीर्घवृत्त) ब्रह्माण्ड के

बीच में है। "र" तथा "क" पर दोनों कक्षाएँ मिलती हैं, जिन्हें नोड कहते हैं। धार्मिक प्रचलन में इन दो बिन्दुओं को राहू तथा केतु की संज्ञा भी दी जाती है। एक दीर्घवृत "न च स" चन्द्रमा तथा सूर्य को जोड़ता दिखलायी पड़ रहा है। यदि सूर्य की दूरी "र स" नोड र से (अमावस्या के दिन) 15^0 .4' है तथा चन्द्रमा की दूरी "स च" सूर्य कक्षा से 1^0 24.7' है तब सूर्य ग्रहण (पूरा या आंशिक) अवश्य ही होगा। यदि उपर्युक्त दोनों दूरियाँ क्रमशः 18^0 .5' तथा 1^0 34.9' होंगी, तब सूर्य ग्रहण नहीं होगा, भले ही चन्द्रमा, पृथ्वी तथा सूर्य के बीच हो अर्थात अमावस्या हो। इसी प्रकार, चन्द्र ग्रहण के लिए पूर्णिमा के दिन उपर्युक्त एक राशि 9^0 .5' तथा 12^0 .1' है।

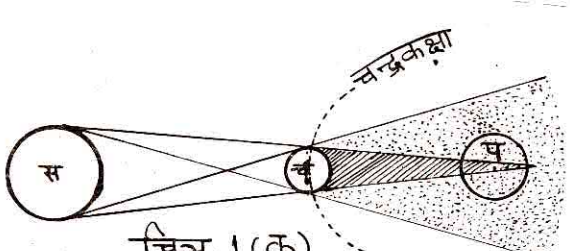

चित्र 1(क)

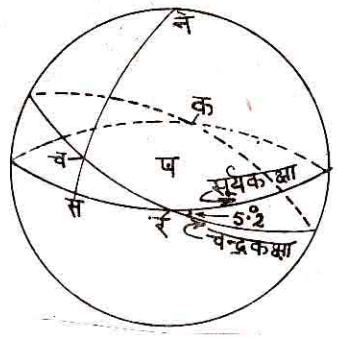

चित्र - 1 (ख)

आज से लगभग 2100 वर्ष पूर्व (15 अप्रैल 136 ईसा पूर्व, सूर्यास्त से कुछ मिनट पहले) बेबीलोन शहर में पूर्ण सूर्यग्रहण हुआ था। इसकी जानकारी छोटे शिला लेख के रूप में विद्यमान है। यह शिला लेख अब ब्रिटिश म्यूजियम की सम्पत्ति है। ग्रहण गणना के तरीकों का प्रयोग करते हुए यदि हम जानना चाहें कि 15 अप्रैल 136 ई.पू. को क्या बेबीलोन में सूर्य ग्रहण रहा होगा, तो ज्ञात होता है कि उस दिन उस स्थान से कोई सूर्यग्रहण प्रतीत नहीं हो सकता है। तब क्या सूर्यग्रहण का प्रेक्षण उल्लेख गलत था या हमारे गणना के तरीके गलत हैं? गणना के तरीके गलत नहीं लगते क्योंकि आने वाले ग्रहणों के बारे में खगोलशास्त्री सही जानकारी देते आये हैं। अतः, इस घटना ने भी वैज्ञानिकों को सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी की गति का और अधिक बारीकी व सतर्कता से अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया। शोध कार्य से अन्ततः यह सिद्ध हुआ कि (1) पृथ्वी की गति अपनी धुरी में घूमते हुए 1.88 मिली सेकिण्ड प्रति 100 वर्ष में कम हो जाती है। परिणाम स्वरूप प्रति 2700 वर्ष में पृथ्वी के घूमने की गति (अपनी धुरी में) लगभग 0.05 सेकण्ड कम हो जायेगी (दिन की लम्बाई तब 24 घण्टे से बढ़कर 24 घंटे और .05 सेकण्ड होने लगेगी। (2) चन्द्रमा अपनी कक्षा में पृथ्वी से दूर होता जा रहा है। प्रति 2700 वर्ष में चन्द्रमा पृथ्वी से 100 मीटर और दूर हो जाता है अर्थात् चन्द्रमा की कक्षा का अर्थ व्यास 100 मीटर बढ़ जाता है। यद्यपि यह संख्या देखने में अत्यन्त न्यून मालूम पड़ती है परन्तु जब बेबीलोन के सूर्य ग्रहण की पुनर्गणना उपर्युक्त राशियों (1) तथा (2) को ध्यान में रखकर की गयी, तब यह सिद्ध हो सका कि वास्तव में बेबीलोन का सूर्य ग्रहण सही समय और स्थान पर था अन्यथा गणना में 5 घण्टे का अन्तर आ रहा था। वैज्ञानिकों ने पृथ्वी के अपनी धुरी में सुस्त चलने तथा चन्द्रमा के अपनी कक्षा में पृथ्वी से दूर होने का कारण भी खोज लिया है। संक्षेप में, पृथ्वी के अपनी धुरी में घूमने से घर्षण (ज्वार-भाटा से सम्बन्धित) के कारण ऊर्जा का विक्षेपण होता है, जिस कारण चन्द्रमा का वृत्तीय परिवर्तन भी होता है और पृथ्वी के अन्दर भी परिवर्तन होता है। उपर्युक्त सूर्य ग्रहण को उद्धृत करने का मुख्य कारण यह है कि दो ज्ञात ग्रहणों के बीच का समय जितना अधिक होगा उतनी ही अधिक सही वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त हो सकेगी, जो कि अन्यथा कम समय में सम्भव नहीं हैं।

इतिहास में इस मान्यता के उल्लेख मिले हैं कि ग्रहण का आदमी की भावनाओं से बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। दो चीनी खगोलशास्त्री "ही" तथा "हो" को सूर्य ग्रहण का सही समय निर्धारित नहीं कर पाने के कारण वहाँ के शासक ने उन्हें मृत्यु दण्ड दिया था। ग्रह और नक्षत्रों के आसमान में विचरण से मानव जीवन में किसी प्रभाव के पड़ने का कोई वैज्ञानिक

आधार नहीं मिला है, न ही यह प्रमाणित हो सका है कि वास्तव में कोई प्रभाव पड़ता है। सूर्य तथा चन्द्रग्रहण के समय या उपरान्त स्नान करने का भी कोई वैज्ञानिक अथवा भेषजीय पहलू ज्ञात नहीं हुआ है। इतना अवश्य है कि पूर्ण सूर्य ग्रहण के समय कुछ पशु-पक्षियों ने अपनी दिनचर्या में रात्रि-भ्रम के कारण परिवर्तन किया है।

ग्रहणों का प्रेक्षण व अध्ययन प्रकृति के महत्वपूर्ण रहस्यों को उजागर करने में सार्थक सिद्ध हुआ है। अतः, पृथ्वी के अपनी धुरी में घूमने की गति में सुस्ती, चन्द्रमा का पृथ्वी से दूर होने के अतिरिक्त पृथ्वी की गहराई में घनत्व परिवर्तन सम्बन्धी जानकारी इत्यादि के लिए इनके अध्ययन की उपयोगिता समय के साथ बढ़ती ही जाएगी। • • •

विकिरण से क्या डरना

यहां वहां सब जगह
विकिरण है उपस्थित
कुछ है प्राकृतिक तो कुछ मानव निर्मित
अंतरिक्ष से आती
कास्मिक विकिरण
लिए अधिक ऊर्जा के
प्रोटान इलेक्ट्रान
व अन्य धन कण
भू चुम्बक में फंसे
इलेक्ट्रान और प्रोटान
सूर्यतल पर घटित प्रक्रियाएं
उत्पन्न करें सौर जगत में
प्रोटान विभूषित
कास्मिक विकिरण
अति ऊर्जा वाले ये कण
टकराएं वायुमंडल से जब उत्पन्न हों
मैसान प्रोटान
गामा इलैक्ट्रान व न्यूट्रान
ये बढ़ाएं अन्य विकिरण

ज्यों चूमें पृथ्वी तल
भूतल पर है विद्यमान
यूरेनियम थोरियम
पोटाशियम रेडियम
उत्पन्न होती विकिरणशील
गैसें रेडान और थोरान
कुछ अन्य रेडियोधर्मी
कार्बन ट्रीटियम बैरिलियम
दूषित करें वायुमंडल
समस्त जगत का सारा जल
रेडियोधर्मिता से संलग्न
भोजन दें हमारे शरीर को
कई रेडियोधर्मी तत्व
अधिकतम है पोटाशियम
कार्बन और रेडियम
विकिरण के महा सागर में
हम हैं डूबे नूपुर से शिखा तक
सूझे नहीं सुरक्षा
सुन्दर धरती से आसमां तक

विकिरण के अनंत सागर में
है वास हमारा
परमाणु विस्फोट देते
रेडियोधर्मी धूल
टी.वी. से हो प्रकट
चक्षुओं में शूल
एक्सरे जनित विकिरण
है औषध फूल
रिएक्टर विद्युत देते विकिरण इनका मूल
मानव निर्मित विकिरण
प्राकृतिक विकिरण का
है केवल बीसवां भाग
डूबा किस सोच में
ओ मानव तू जाग

— मेघ सचदेव
राजस्थान परमाणु बिजलीघर
अणुशक्ति - 323 303
कोटा (राजस्थान)

पुस्तक समीक्षा

1) **पुस्तक का नाम :** कैंसर, बचाव और उपचार
लेखक : डा. सुकमाल जैन
प्रकाशक : सन्मति प्रकाशन, 138-सी सन्मति कुटीर, बावड़ी चाल, चन्दावाड़ी, सी. पी. टैंक, बम्बई - 400 004, **मूल्य :** रु. 100/-

'वर्ष वैभव' नामक हिन्दी वार्षिक पत्रिका के विशेषांक के रूप में प्रकाशित कैंसर जैसे भयानक रोग पर यह पुस्तक लेखक के अनथक परिश्रम का फल है। यह शरीर-संसार छोड़ कर तो सभी को जाना है, परन्तु शारीरिक दुख-दुर्दशा की अवधि को मानदंड मानकर शरीर छोड़ने के सारे मार्ग हृदय गति अचानक बन्द पड़ने (हार्ट फेल) और कैंसर, इन दो सीमाओं के बीच के माने जा सकते हैं, यद्यपि अब कैंसर से भी अधिक पीड़ादायक और लंबी अवधि तक चलनेवाली लाइलाज बीमारियों के कुछ मामले भी सामने आने लगे हैं। जान लेने में ये दोनों बीमारियां फिर भी सबसे प्रमुख हैं।

स्वयं चिकित्सक न होते हुए भी, कैंसर जैसी जटिल बीमारी के बारे में अधिक से अधिक जानकारी एकत्रित करके किस प्रेरणा से 370 पृष्ठों की इस पुस्तक में डा. जैन ने स्वयं के और अन्य कई कैंसर विशेषज्ञों के विचारों का संकलन किया है, यह तो वे स्वयं ही जानें, परन्तु इस विषय पर वर्ष 1990 तक की जनसामान्य हेतु उपयोगी लगभग सारी जानकारी इसमें उपलब्ध है। सबसे बड़ी जानकारी तो यह है कि कैंसर का पता यदि उसके शरीर में फैलने से पहले, प्रारम्भिक स्थिति में ही लग जाए तो यह रोग असाध्य नहीं रह गया है। इस पुस्तक में कैंसर सम्बन्धी अनेक भ्रान्तियों को दूर किया गया है।

इस पुस्तक को सात अध्यायों में बांटा गया है, जिनके नाम इस प्रकार है, (1) कैंसर के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी, (2) कैंसर के कारण, लक्षण और कैंसर से बचाव, (3) बच्चों, किशोरों, युवकों और महिलाओं के कैंसर, (4) पुरुषों पर अधिक हमला करनेवाले ये कैंसर, (5) कैंसर का उपचार, (6) कैंसर चिकित्सा केन्द्र और समाजसेवी संस्थाएं, तथा (7) कैंसर पर विजय : एक आशाजनक भविष्य। प्रत्येक अध्याय में उसके विषय के अनेक विशेषज्ञों द्वारा लिखित लेख सम्मिलित किये गये हैं। आधुनिक एलोपैथी के विशेषज्ञों के साथ-साथ आयुर्वेद और होमियोपैथी के विशेषज्ञ मिलाकर, कुल लगभग 25 विशेषज्ञों के लेख और विचार इस पुस्तक में संकलित हैं।

इस अद्वितीय पुस्तक का अनुवाद भारत की अन्य भाषाओं में भी होना चाहिए।

2) **पुस्तक का नाम :** वायु, जीवन और प्रदूषण
लेखक : डा. श्याम सुन्दर पुरोहित
पृष्ठ संख्या : 48, **मूल्य :** रु. 10/-

3) **पुस्तक का नाम :** पर्यावरण
लेखक : डा. श्याम सुन्दर पुरोहित एवं कु. अर्चना
पृष्ठ संख्या : 64, **मूल्य :** रु. 15/-

दोनों पुस्तकों के प्रकाशक : अजन्ता बुक्स, सेक्टर-IV, 175 जे. एन. व्यास कालोनी, बीकानेर - 334 001.

पहली पुस्तक के लेखक तो डा. पुरोहित ही हैं, दूसरी पुस्तक के भी वे वरिष्ठ लेखक हैं। दोनों ही पुस्तकें लेखकों के अनुसार, पर्यावरण और उसके प्रदूषण विषय पर बच्चों को प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से लिखी गयी हैं। बच्चों की पुस्तकों का टाइप बड़ा होता है और उसमें जो कुछ भी सामग्री होती है, वह सुस्पष्ट होती है। ऐसी पुस्तकों में भाषाई तथा विषय सम्बन्धी त्रुटियां नहीं होनी चाहिए। इस दृष्टि से, 'पर्यावरण' नामक पुस्तक का टाइप तो ठीक है, परन्तु 'वायु, जीवन और प्रदूषण' का टाइप बहुत छोटा है। दोनों ही पुस्तकों में भाषाई और विषय सम्बन्धी अनेकों त्रुटियां हैं। चित्रों का चयन भी बिना सोचे-विचारे किया गया है।

विज्ञान विषय के लेखकों की यह स्वस्थ परंपरा रही है कि जब तक कुछ लिखने योग्य सामग्री अपने पास न हो, पुस्तक नहीं लिखते हैं। एक पुस्तक लिख देने के बाद दूसरी पुस्तक पर्याप्त नयी सामग्री उपलब्ध होने पर ही उसी विषय पर लिखते हैं, अन्यथा पहली पुस्तक में ही नयी सामग्री जोड़ कर, उसे सुधारते रहते हैं। इन दोनों पुस्तकों में कुछ सामग्री शब्दशः एक-ही होने के कारण, इस परंपरा का उल्लंघन हुआ है। फोटो-चित्र दोनों पुस्तकों में अस्पष्ट हैं। रेखाचित्रों को पाठ में स्पष्ट नहीं किया गया है।

यदि इन पुस्तकों को बच्चों के लिए उपयोगी बनाना है, तो इनमें सुधार की बहुत आवश्यकता है।

– डा. जनार्दन स्वरूप

संगोष्ठी समाचार

1. विज्ञान की भावी दिशाएं

द्वि-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी

7-8 दिसम्बर,1990 को प्रगत प्रौद्योगिकी केन्द्र,इन्दौर के कल्याण केन्द्र सभागृह में एक द्वि-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद ने प्रगत प्रौद्योगिकी केन्द्र की राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सहयोग से किया। इस संगोष्ठी में देश के विभिन्न संस्थानों से लगभग 200 प्रतिनिधियों ने भाग लिया जिनमें लगभग 35 प्रतिनिधि इन्दौर से बाहर के थे।

संगोष्ठी का पहला सत्र,उद्घाटन-सत्र,श्री सत्यनारायण व्यास के स्वागत भाषण से आरम्भ हुआ। परिषद के उपाध्यक्ष डा. दीनदयाल सूद ने संगोष्ठी के लिए आयोजित तेरहों वार्ताओं का परिचय दिया और केन्द्र के निदेशक,डा.डी.डी. भवालकर ने अपने अध्यक्षीय भाषण में बताया कि संगोष्ठी की सभी वार्ताएं मिलकर आधुनिक विज्ञान के लगभग सभी प्रमुख विषयों को सम्मिलित कर लेती हैं। परमाणु ऊर्जा विभाग के वरिष्ठ तकनीकी सलाहकार,डा. महेश्वर दयाल ने संगोष्ठी का उद्घाटन अपनी प्रमुख वार्ता से किया जिसका विषय था 'ऊर्जा के अपरंपरागत स्रोत'। इस वार्ता में उन्होंने जल्दी-ही समाप्त होने वाले ऊर्जा के परंपरागत स्रोतों द्वारा पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव की चर्चा की और भविष्य के लिए गोबर गैस, सौर ऊर्जा, समुद्री लहरों की ऊर्जा आदि अपरंपरागत ऊर्जा-स्रोतों पर बल दिया। इस सत्र का समापन डा. वि.कु. मनचन्दा के धन्यवाद प्रस्ताव के साथ हुआ।

संगोष्ठी की अन्य बारह वार्ताएं छह सत्रों में दो दिनों तक चलीं। इसके विषय और वार्ताकार निम्नलिखित थे :

नाभिकीय ऊर्जा : श्री वी. आर. श्रीनिवासन्, मुख्य अधीक्षक,राजस्थान परमाणु बिजलीघर,कोटा

संलयन ऊर्जा : श्री जे. सी मोगा,भा.प.अ.केन्द्र,बम्बई

अतिचालकता : डा. जे. वी. यग्मी, भा. प. अ. केन्द्र, बम्बई

लेसर : डा. डी. डी. भवालकर, निदेशक, प्रगत प्रौद्योगिकी केन्द्र,इन्दौर

वर्ष 2000 में दूर संचार : डा. ओ. पी. एन. कल्ला, उपनिदेशक,अन्तरिक्ष उपयोग केन्द्र,अहमदाबाद

कंप्यूटर : श्री एच.के कौरा,अध्यक्ष,कंप्यूटर प्रभाग,भा. प.अ.केन्द्र,बम्बई

पदार्थ की चतुर्थ अवस्था : डा.एम.एस.सोढा,कुलपति, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय,इन्दौर

त्वरक : डा.आर.वी.नांदेड़कर,प्रगत प्रौद्योगिकी केन्द्र, इन्दौर

प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम : मेजर जनरल वी.जे.सुन्दरम्, सह निदेशक,रक्षा अनुसंधान एवं विकास प्रयोगशाला,हैदराबाद

उच्च ऊर्जा खगोल भौतिकी : प्रो.पी.सी.अग्रवाल,टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान,बम्बई

अनुवांशिक विज्ञान : प्रो. ओ. सिद्दीकी, टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान,बम्बई

बृहत चक्रीय रसायनिकी : प्रो. एन. एस. पूनिया, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय,इन्दौर

प्रत्येक वार्ता आधा घन्टे की थी,और दो वार्ताओं के बाद प्रश्नोत्तर के लिए आधा घन्टे का समय दिया गया था जो प्रत्येक सत्र में बहुत-ही जीवन्त रहा।

विज्ञान के सीमान्त विषयों पर समय-समय पर आयोजित इस प्रकार की संगोष्ठियों से यह भ्रम मिट जाना चाहिए कि विज्ञान के संप्रेषण के लिए हिन्दी,अथवा अन्य कोई भारतीय भाषा सशक्त नहीं है।

— डा. जनार्दन स्वरूप

2. विकिरण संरक्षण - मापदण्ड एवं कार्यान्वयन

द्वि-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी

राष्ट्रीय श्रम विज्ञान केन्द्र, शीव, मुंबई में नाभिकीय विज्ञान अनुसंधान परिषद (बी.आर.एन.एस), परमाणु ऊर्जा विभाग के प्रायोजन से 'विकिरण संरक्षण मापदंड एवं कार्यान्वयन' पर जनवरी 17-18, 1991 को एक द्विदिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस विषय पर हिंदी माध्यम से होने वाली यह प्रथम राष्ट्रीय संगोष्ठी थी। संगोष्ठी का शुभारम्भ प्रातः 9.30 बजे डा. चिंतामणि सूंठा द्वारा स्वागत से हुआ। प्रथमबार वैज्ञानिक संगोष्ठी को एक गीत द्वारा प्रारंभ किया गया। इस गीत में विकिरण तथा तत्संबंधित अन्य वैज्ञानिक गतिविधियों को बड़ी रोचकता से ताल एवं लय में बद्ध किया गया था। यह गीत राजस्थान परमाणु बिजली घर के वैज्ञानिक, श्री मेघराज सचदेव द्वारा लिखा गया था।

संगोष्ठी का उद्घाटन भाषण, जसलोक अस्पताल के चिकित्सा निदेशक, महानुभवी डा. आर. डी. लेले ने दिया। डा. लेले ने बड़ी सरलता, रोचकता से अपने दैनिक जीवन के अनुभव के आधार पर विकिरण के उपयोगों और उनके खतरों पर प्रकाश डाला। संगोष्ठी की अध्यक्षता राष्ट्रीय श्रम विज्ञान केंद्र के श्री कृष्णन ने की। उन्होंने अपने भाषण में विकिरण संबंधी हुई दुर्घटनाओं के आधार पर यह कहा कि विकिरण संबंधी जानकारी जनसामान्य के लिए भी अतिआवश्यक है, तथा संगोष्ठी के माध्यम से जनसामान्य तक विकिरण का ज्ञान पहुंचाना एक सराहनीय प्रयास है। श्री एस.डी.सोमण, अध्यक्ष, परमाणु ऊर्जा नियामक परिषद की मुख्य वार्ता 'भारत में विकिरण संरक्षण नीति एवं नियमावलि,' को उनकी अनुपस्थिति में श्री एम. एस. आर. शर्मा ने पढ़ा। आयोजन समिति के सचिव, श्री विजय कुमार भार्गव ने इस अवसर पर वक्ताओं, प्रतिभागियों और अन्य सहयोगियों का आभार प्रकट किया। इसी अवसर पर डा. आर. डी. लेले के कर कमलों द्वारा एक विकिरण विज्ञान प्रदर्शनी का भी उद्घाटन किया गया। विकिरण के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करने के लिए इस संगोष्ठी को निम्न 9 सत्रों में आयोजित किया गया :

1. विकिरण संरक्षण विचारधारा एवं जैविक प्रभाव
2. विकिरण मापन एवं मापदंड निर्धारण
3. परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम में संरक्षण कार्यक्रम
4. रेडियोधर्मी पदार्थों के उपयोग में संरक्षण कार्यान्वयन
5. आपात स्थिति प्रबंधन
6. अपशिष्ट प्रबंधन
7. क्ष-किरणों में सुरक्षा
8. जनशिक्षा एवं प्रशिक्षण
9. विकिरण संरक्षण - मुक्त चर्चा एवं समापन कार्यक्रम

उक्त सभी विषयों पर कुल मिलाकर 45 वार्ताएं हुईं। वार्ताओं का प्रश्नोत्तरकाल जिज्ञासा पूर्ण तथा ज्ञानवर्धक रहा।

मुक्त चर्चा में बंबई से बाहर के संस्थानों से आये कई प्रतिभागियों ने प्रबंधकों द्वारा विकिरण स्रोतों का गलत ढंग से प्रयोग तथा विकिरण सुरक्षा समस्याओं की शिकायतों पर ध्यान देने के लिए परमाणु ऊर्जा नियामक परिषद से एक विशेष संस्था गठित करने का आग्रह किया। कुछ प्रतिभागियों ने एक्स-किरण मशीन चालकों हेतु लाइसेंस व्यवस्था, तथा एक्स-किरण चित्रण कराने वाले रोगियों तथा उनके अभिभावकों को अत्यधिक मात्रा में उद्भासन मिलने आदि की समस्याओं का समाधान करने पर बल दिया। श्री एम.एस.आर शर्मा ने अपने समापन भाषण में आश्वासन दिया कि वे परमाणु ऊर्जा नियामक परिषद में उक्त समस्याओं पर अवश्य विचार करेंगे।

इस अवसर पर आयोजित प्रदर्शनी की सभी आगंतुकों ने प्रशंसा की। विभिन्न विद्यालयों के करीब 100 बच्चों ने भी इस प्रदर्शनी का लाभ उठाया।

संक्षेप में, संगोष्ठी अत्यंत रोचक एवं ज्ञानवर्धक रही।

— डा. जनार्दन स्वरूप

विकिरण समस्थानिक [रेडियोआइसोटोप]

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय प्रगति हेतु अनिवार्य साधन

विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड (बी आर आई टी) ने देश में विविध रेडियो उत्पादों की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने में स्वयं को पूर्णतया समर्पित किया है। रेडियोआइसोटोप के उत्पादन एवं अनुप्रयोग हेतु इस क्षेत्र में अनुसंधान की कुछ उत्कृष्ट सुविधाएं ट्रॉंबे में स्थापित की गयी है। स्वदेशी अनुसंधान एवं विकास कार्यों पर निर्भर रहते हुए 'ब्रिट' (बी आर आई टी) ने रेडियोआइसोटोप उत्पादों का विस्तृत रुप से विकास किया है एवं देश विदेश के 1000 से भी अधिक संगठनों की आवश्यकताओं की आपूर्ति की है।

कुछ महत्वपूर्ण उत्पाद एवं प्रदत्त सेवाएं इस प्रकार हैं:

- **विकिरण भेषज (रेडियोफार्मास्युटिकल्स) :**
  विभिन्न प्रकार के रोगों के निदान एवं थायराइड रोगों के उपचार हेतु।
- **विकिरण प्रतिरक्षा आमापन (रेडियो इम्यूनो ऐसे) किट्स :**
  हार्मोन्स तथा औषधियों की सूक्ष्म मात्रा के आकलन हेतु।
- **रेडियोरसायन एवं विकिरण स्रोत :**
  अनुसंधान, औद्योगिक अनुप्रयोगों एवं कैन्सर रोगोपचार हेतु।
- **रेडियोग्राफी कैमरे एवं उपसाधन :**
  सांचो तथा वेल्डों के रेडियोग्राफिक निरीक्षण हेतु।
- **गामा किरणन उपस्कर :**
  चिकित्सा उत्पादों के विकिरण निर्जर्मीकरण या खाद्य किरणन हेतु।
- **विकिरण निर्जर्मीकरण सेवा :**
  प्रयोज्य चिकित्सा उत्पादों जैसे, आई.सैट, वी.कैथीटर (मूत्रनलिका), जाली का कपड़ा, रुई, शल्य ब्लेड, दस्ताने, रिक्त पात्र आदि के विकिरण निर्जर्मीकरण हेतु।

कृपया, अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें :

वरिष्ट प्रबंधक एवं विपणन संचालन प्रभारी,
विकिरण एवं आइसोटोप प्रोद्योगिकी बोर्ड (बी आर आई टी)
वि. ना. पुरव मार्ग, देवनार, बम्बई - 400 094.
टेलीफोन : 555 16 76 / 551 04 01 / 551 49 10 (विस्तार 4772)
तार : ब्रिटएटम, बम्बई-94. टेलेक्स : 11 72212 ब्रिट इन्

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के लिए **डा. जनार्दन स्वरूप** द्वारा संपादित तथा **डा. शिव प्रकाश गर्ग** द्वारा युनिव्हर्सल इंटरप्राइजेस, चेंबूर, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित.

वैज्ञानिक (त्रैमासिक) R. No. 18862/70
दिल्ली, नई दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ.प्र. के शिक्षा/विभागों द्वारा स्कूल व कॉलेजों के लिए स्वीकृत

NUCLEAR POWER CORPORATION

STEPPING UP POWER GENERATION FOR GENERATIONS TO COME

Nuclear Energy from the unlimited energy source. Environmentally clean and safe. Indigenously developed and totally self-reliant, to meet the growing energy demand for a better quality of life for our increasing millions.

NPC committed to serving the nation, utilising India's vast nuclear resources for generation of power for generations to come.

NUCLEAR POWER CORPORATION
(A Govt. of India Enterprise)

16th & 20th floor, World Trade Centre 1,
Cuffe Parade, Bombay 400 005.

NPC. Fuelling a powerful future.

CONTOUR ADS-NPC-42B/9